इकाई 2 पर्यावरण के घटक : 1 — प्रकाश, तापमान और वायुमंडल

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
2.2 प्रकाश
विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम
सौर ऊर्जा निवेश
विकिरणमापी उपकरण
प्रकाश के कालगत परिवर्तन — दैनिक और ऋतुनिष्ठ
प्रकाश और जीवों का वितरण
प्रकाशकालिता
2.3 तापमान
अक्षांशीय परिवर्तन
तुंगीय परिवर्तन
भूमंडलीय तापमान
तापमान बलाघात
अनुकूलनताएं
2.4 वायुमंडल
संरचना
स्तरीकरण
दाब प्रवणता
भूमंडीलय वायु-परिचालन
हवाएँ
2.5 सारांश
2.6 अंत में कुछ प्रश्न
2.7 उत्तर

2.1 प्रस्तावना

इकाई-1 में हमने पारिस्थितिकी विज्ञान के विषय में सामान्य परिचय दिया था। आपने पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों के विषय में जाना जो कि जीवधारियों को प्रभावित करते हैं। इस इकाई में तथा इससे अगली दो इकाइयों में पर्यावरण के अजैविक घटकों एवं उनकी पारस्परिक क्रिया के विषय में चर्चा की जाएगी।

यदि हम पृथ्वी के विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में रहने वाले जीवों के अस्तित्व, वितरण, प्रचुरता तथा अनुकूलनशीलता को समझना चाहते हैं तो हमें अजैविक घटकों में से भौतिक पर्यावरणपरक कारकों जैसे प्रकाश तापमान, पवन, जल, मृदा आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस इकाई में हम पृथ्वी पर पहुंचने वाले सौर-विकिरण के गुणात्मक और मात्रात्मक पहलुओं का वर्णन करेंगे तथा वायुमंडल और तापमान का वर्णन करेंगे। हम प्रकाश को मापने वाले यंत्रों के विषय में भी जानेंगे। प्रकाश एवं उष्मा के परिवर्तन का जैविक समुदायों के वितरण एवं व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हरे पौधे सौर ऊर्जा को ग्रहण करके प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के द्वारा उसे रासायनिक ऊर्जा में बदल देते है। प्राणियों में प्रकाश द्वारा प्राप्त होने वाला अभिग्रहण ही वह सबसे महत्वपूर्ण संवेदन है जिसके द्वारा वे अपने पर्यावरण को देख सकते हैं। अधिकतर प्राणियों में प्रकाशग्राही ज्ञानेन्द्रियां होती हैं जो उनके व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करती हैं।

जीवधारी कुछ विशिष्ट ताप परिसर के लिए ही अनुकूलित होते हैं जिसमें वे जीवित रह सकते हैं एवं प्रजनन कर सकते हैं। पौधें और प्राणी चरम ताप को सहन करने के लिए कुछ विशिष्ट संरचनात्मक तथा क्रियात्मक अनुकूलन विकसित कर लेते हैं, या फिर वे कुछ विशिष्ट तौर-तरीके अपना लेते हैं जिनसे वे प्रतिकूल तापक्रम से अपने आपको बचा सकें। जीवों के वितरण एवं व्यवहार को प्रभावित करने में पवन भी एक और महत्वपूर्ण कारक है। पवन का महत्व खास तौर से पौधों के लिए है क्योंकि पौधों को पवन के तेज वेगों से जूझना पड़ता है। कुछ पवन अनुकूलनों का इस इकाई में संक्षेप में विवेचन किया जाएगा।

हमने अजैविक कारकों का अलग-अलग विवेचन सुविधा के लिए किया है लेकिन ये कारक शायद ही कभी अलग अपना प्रभाव डालते हैं। प्रस्तुत इकाई तथा अन्य इकाइयों में किए गए विवेचन से आपको इन सब कारकों के पारिस्थितिक तंत्र प्रक्रियाओं पर समाकलित प्रभाव को समझने में

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रकाश की गुणवत्ता, मात्रा एवं अवधि में विभेद कर सकेंगे, विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र में प्रकाश का महत्व बता सकेंगे और प्रकाश को मापने के विभिन्न यंत्रों का वर्णन कर सकेंगे।
- भूमंडलीय विकिरण-संतुलन की रूपरेखा दे सकेंगे, और स्थलीय तथा जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में प्रकाशीय विभिन्नता का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।
- तापमान में अक्षांशीय परिवर्तन और तुंगीय परिवर्तन का वर्णन कर सकेंगे, और विभिन्न बायोमों के समासंघ ताप के प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।
- पृथ्वी के वायुमंडल की संघटना एवं उसके स्तरीकरण का वर्णन कर सकेंगे।
- भूमंडलीय पवन परिसंचरण (circulation) प्रतिपन (inversion) तथा मानसून आदि की रूपरेखा दे सकेंगे।
- विभिन्न आवासीय परिस्थितियों में प्रकाश, ताप और पवन की चरम सीमाओं के कारण पौधों और प्राणियों में होने वाले अनुकूलनों के महत्व को समझ सकेंगे।
- निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दों को समझा सकेंगे और उनका उचित संदर्भ में उपयोग कर सकेंगे :
  सौर स्थिरांक (solar constant), अलबीडो (albedo), लुक्स (lux), प्रकाशकालिता (photoperiodism) एडाइबेटिक परिवर्तन (adiabatic change), यूरीथर्म (eurytherm), तापकालिता (thermoperiodism), विशिष्ट तापमान (cardinal temperature), समतापी (homeotherm), विषमतापी (heterotherm), असमतापी (poikilotherm), संकीर्णतापी (stenotherm)।

2.2 प्रकाश

हम सभी जानते हैं कि हमारे जैवमंडल में होने वाली समस्त संक्रियाओं के लिए सूर्य ही अंततोगत्वा ऊर्जा-स्रोत है। सूर्य से आने वाले विद्युतचुंबकीय विकिरण ऊर्जा प्रदान करते हैं। ऊर्जा पृथ्वी एवं वायुमंडल को गर्म करती है, इसीसे जीवधारियों के लिए एक अनुकूल भूमंडलीय ताप प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त प्रकाश सजीव सृष्टि में अनेक विविध भूमिकाएं निभाता है। हम जानते हैं कि इससे प्रकाश-संश्लेषण होता है। इसके अलावा प्रकाश पौधों और प्राणियों के लिए सूचना का प्रेषण भी करता है जिससे वे अपने जीवनचक्रों के कार्यक्रम का निर्धारण कर सकें, जैसे कि कलियों और फूलों के खिलने के समन्वय में, पत्तियों के झड़ने में और इसी प्रकार के अन्य शरीर क्रियात्मक कार्य करने में। प्रकाश की मात्रा घटने-बढ़ने से सामान्यतः पौधों का स्थानीय वितरण प्रभावित होता है। प्राणियों में प्रकाश से जनन, शीत-निष्क्रियता तथा प्रवास का नियमन होता है और निःसंदेह प्रकाश के कारण ही जीव देख सकते हैं। ये सभी जैविक घटनाएं प्रकाश की तीव्रता (intensity) में होने वाले अंतर एवं प्रकाश के ऋतुनिष्ठ (seasonal) और दैनिक (diurnal) द्विवापरक परिवर्तन द्वारा प्रभावित होती हैं।

आगे वाले खंडों में हम सौर-विकिरणों के गुणधर्मों तथा उनके भूमंडलीय वितरण का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

2.2.1 विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम

विज्ञान और प्रौद्योगिकी में आधार पाठ्यक्रम (इकाई-10), (भाग 10.2.1) में आपने विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम के बारे में पढ़ा है। यह गामा (γ-ray) तथा एक्स-किरणों (x-rays) से विस्तार करता हुआ, पराबैंगनी (ultraviolet), दृश्यमान (visible), अवरक्त (infrared) से लेकर रेडियोतरंगों (radiowaves) तक फैला हुआ है। पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाले सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण एवं उसकी तीव्रता ज्ञात की गई है। जैसाकि चित्र 2.1 में दिखाया गया है, पृथ्वी पर पड़ने वाला विकिरण पराबैंगनी के निकट से लेकर लाल के आगे अवरक्त तक फैला हुआ है। जैसा कि आप जानते हैं, साधारणतः सिर्फ विद्युतचुंबकीय स्पेक्ट्रम के दृश्यमान भाग को ही प्रकाश कहा जाता है। जिस प्रकाश में हम वस्तुओं को देख सकते हैं उसकी आवृत्ति के परास को दृश्य क्षेत्र (visible) कहा जाता है।

विद्युतचुंबकीय विकिरणों में द्वैत प्रकृति है — तरंगात्मक और कणात्मक। प्रकाश द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रकाश जैवकीय घटनाओं में से अनेक कुछ को प्रकाश की तरंगात्मक प्रकृति के द्वारा भलीभांति समझाया या सकता है जबकि अन्य घटनाओं को प्रकाश की कणात्मक प्रकृति के आधार पर समझा-समझाया जा सकता है। (यदि आप इस अवधारणों को फिर से दोहराना चाहें तो रसायन विज्ञान की कक्षा XI-XII भाग-2 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद) में सेक्शन 1.1 प्रकाश की द्वैत प्रकृति पढ़ें। विद्युत तरंग विकिरण-ऊर्जा का एक स्वरूप है। यह ऊर्जा के विविक्त (discrete) पैकेट द्वारा जिन्हें फोटॉन (photon) कहते हैं, संचरित होता है। प्रत्येक तरंगदैर्ध्य के फोटॉन में ऊर्जा क्वांटम (मात्रा) अलग-अलग होती है। किसी विशिष्ट तरंग की ऊर्जा की मात्रा उसके तरंगदैर्ध्य (wavelength) अथवा बारंबारता (frequency) पर निर्भर होती है और उसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :

ν = "न्यू" बोला जाता है।

1 cm = 10^{-2} meter (m)
1 μm (micrometer = 10^{-6} m
1 nm (nanometer) = 10^{-9} m
1 A° (Angstrom) = 10^{-10} m

$E \alpha \nu$ १

$E = h\nu$

E = तरंग ऊर्जा (Joule/second)

ν = तरंग की बारंबारता (Hertz cycles/second)

h = प्लैंक नियतांक (Plank's constant)
इसका मान $\sim 1.6 \times 10^{-34}$ (calorie/second)
या = 6.6 × 10 (Joule/second)

बारंबारता तरंगदैर्ध्य के व्युत्क्रम (inversely) अनुपात में होती है और इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

$$\nu = \frac{c}{\lambda}$$

c = प्रकाश का वेग (निर्वात में)
$\sim 3.0 \times 10^{10}$ cm/s or 3.0×10^{8} m/s

λ = तरंगदैर्ध्य (cm या m में)

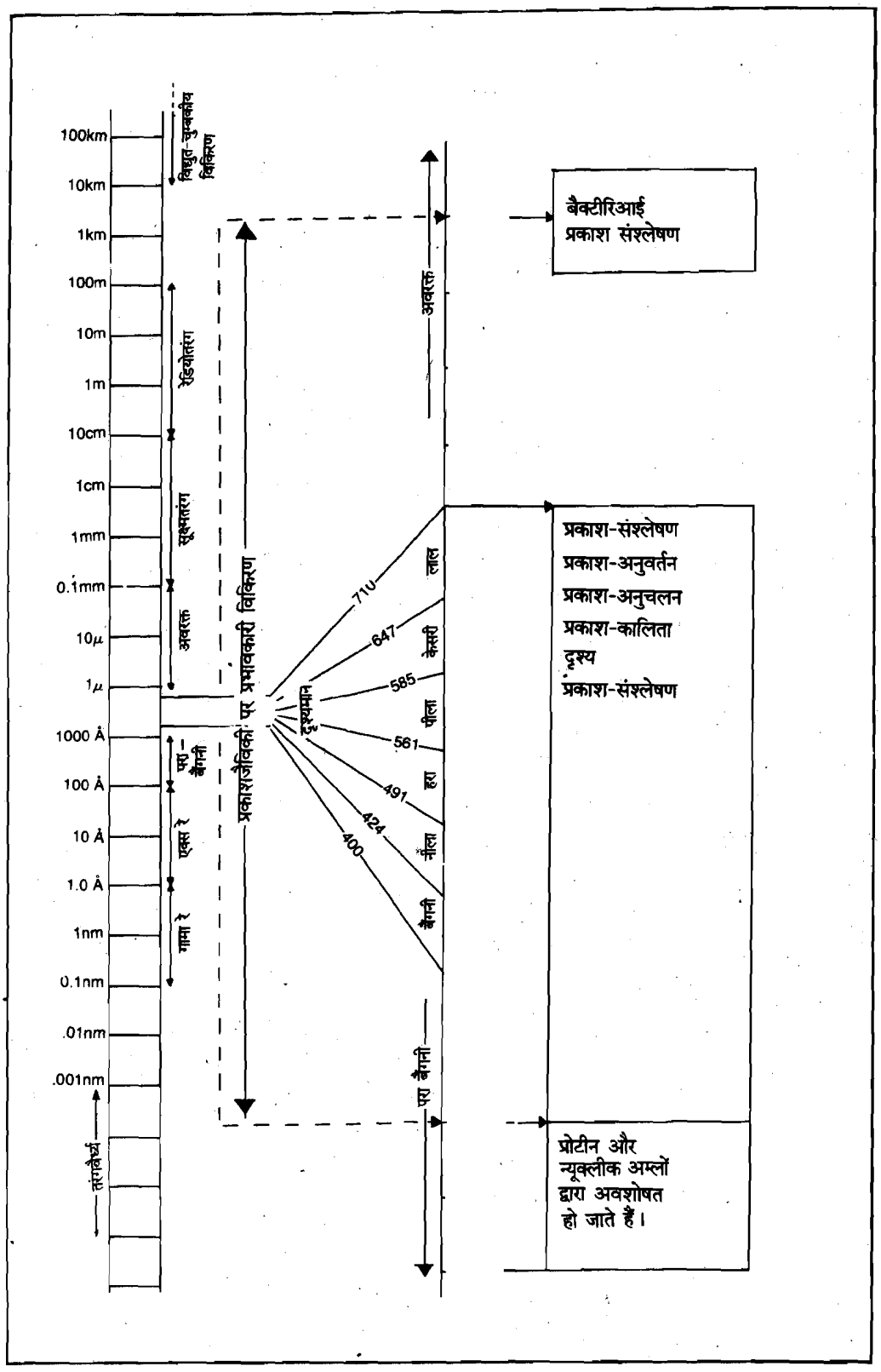

चित्र 2.1 : सौर-विकिरण का विद्युत-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम और उनके द्वारा होने वाली प्रकाश-जैवकीय परिघटनाएँ

चित्र 2.1 में दिए गए विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम के दृश्यमान क्षेत्र को देखिए। लाल प्रकाश की तुलना में नीले प्रकाश का तरंगदैर्ध्य छोटा होता है और बारंबारता अपेक्षाकृत अधिक होती है और ऊर्जा अधिक होती है जबकि लाल प्रकाश में उच्चतर तरंगदैर्ध्य और अपेक्षाकृत कम बारंबारता होती है और ऊर्जा कम होती है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, दृश्यमान प्रकाश में विभिन्न रंग है और प्रत्येक रंग का अपना एक विशिष्ट तरंगदैर्ध्य परास है। वैज्ञानिक विशिष्ट वर्ण-छलनियों का प्रयोग करके एक विशिष्ट तरंगदैर्ध्य प्राप्त करते हैं और इसका जीवधारियों की विविध, जैवक्रीय प्रक्रियाओं पर और उनके व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

मानव नेत्र 400 nm से लेकर 700 nm के तरंग परास के प्रति कार्यशील होते हैं। इन तरंगों से ही हमारी दृष्टि क्षमता है, इसलिए इन्हें दृश्यमान प्रकाश कहते हैं। हमारी आंखें 555 nm की तरंगों के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील होती हैं। प्रकाश संश्लेषण में भी लगभग उन्हीं तरंगदैर्ध्य की ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो दृश्यमान प्रकाश में हैं।

चित्र 2.1 में पराबैंगनी, दृश्यमान तथा अवरक्त के क्षेत्र दिखाए गए हैं और साथ में उनके द्वारा होने वाली प्रकाश-जैविकीय परिघटनाएँ भी दिखाई हैं। आप इस चित्र का थोड़ी देर तक अच्छी तरह अध्ययन कीजिए। अगला खंड पढ़ने से पहले, आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल कीजिए। कुछ प्रकाश जैविकीय परिघटनाओं के विषय को फिर से ध्यान में लाने के लिए अन्त में दी गई पारिभाषिक शब्दावली को देखिए।

लाल प्रकाश तरंग में कम ऊर्जा होती है परन्तु अत्यधिक बेधने की क्षमता होती है। लाल बत्तियां सड़कों पर इसीलिए लगाते हैं।

बोध प्रश्न 1

क) 2×10 cm के तरंगदैर्ध्य के विकिरण में प्रति क्वांटम ऊर्जा का परिकलन कीजिए।

अपने उत्तर जूल और कैलोरी दोनों इकाइयों में दीजिए। (प्रकाश की गति = 3×10^{10} cm/second)

.....

.....

.....

ख) कॉलम 1 में दिए गए तरंगदैर्ध्य-परासों को कॉलम 2 में दिए गए अनुरूप कथनों से मिलाइए।

कॉलम 1 तरंगदैर्ध्य परास	कॉलम 2 कथन
i) 900 nm	क) प्रोटीन और न्यूक्लीक अम्लों द्वारा अवशोषित हो जाते हैं।
ii) 200 nm – 300 nm	ख) प्रकाश जैविकीय परिघटनाओं में प्रभावकारी विकिरण।
iii) 300 nm – 900 nm	ग) बैक्टीरिया प्रकाश संश्लेषण।
iv) 390 nm – 760 nm	घ) दृश्यमान प्रकाश।

ऊर्जा को मापने की वर्तमान इकाई Joule/second
4.18 Joule (J) = 1 calorie (c)
Watt = Joule/second.

2.2.2 सौर ऊर्जा निवेश

हम पहले ही बता चुके हैं कि पृथ्वी की सतह पर पड़ने वाले सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण और तीव्रता हमें मालूम है। सूर्य से विकीर्णित विपुल ऊर्जा (5.6×10^{27} cal/min.) का एक अरबवें भाग का भी केवल आधा ही भाग पृथ्वी द्वारा अवरोधित होता है। साथ ही यह सौर-विकिरण सारा पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश नहीं कर सकता। लेकिन वायुमंडल की चरम सतह (top of atmosphere) पर प्राप्त होती रहने वाली सौर-ऊर्जा की मात्रा स्थिर बनी रहती है। इस ऊर्जा को सौर-स्थिरांक (solar constant) कहते हैं। इस सौर-स्थिरांक की परिभाषा इस प्रकार की जाती है — पृथ्वी की सूर्य से औसत दूरी होने पर, सौर विकिरण पुंज से लंबवत् (perpendicular) अभिविन्यस्त (oriented) में पृथ्वी की समतल सतह के एक इकाई क्षेत्र पर पड़ने वाले सौर-विकिरण की दर। औसतन यह 2 calorie/cm. होती है।

जब वायुमंडल में से होते हुए सौर-विकिरण उसके साथ अन्योन्यक्रिया (interact) करता है तो उसमें तीन विभिन्न तरीकों से ह्रास होता है। परावर्तन (reflection), प्रकीर्णन (scattering) तथा अवशोषण (absorption)। चित्र 2.2 में एक सौ इकाई सौर विकिरण की पृथ्वी और वायुमंडल में अन्योन्यक्रिया (interaction) का नतीजा दर्शाया गया है। पृथ्वी पर आने वाले कुल सौर-विकिरण का लगभग 30 प्रतिशत भाग बादलों द्वारा परावर्तित हो जाता है, इसका लगभग 19 प्रतिशत भाग ऑक्सीजन, ओजोन, जल, हिम क्रिस्टलों तथा निलंबित कणों में सीधे ही अवशोषित हो जाता है जिससे वायु कुछ हद तक गर्म हो जाती है। शेष 51 प्रतिशत पृथ्वी की सतह में या तो अवशोषित हो जाता है या पृथ्वी से परावर्तित हो जाता है तथा उष्मा में बदल जाता है। इस प्रकार कुल पृथ्वी और वायुमंडल द्वारा अवशोषित 70 प्रतिशत विकिरण (19 प्रतिशत वायुमंडल द्वारा और 51 प्रतिशत पृथ्वी द्वारा) हमारे जैवमंडल को कार्यान्वित रखने में काम आता है।

आकाश का नीला रंग नाइट्रोजन और ऑक्सीजन के अणुओं द्वारा दृश्यमान सूर्य-प्रकाश के नीले अंश के प्रकीर्णन के कारण है।

पृथ्वी पर भांति-भांति की सतहें पाई जाती हैं — खुरदरी, चिकनी, हिमाच्छादित, जलाच्छादित और विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों से ढकी हुई। विकिरण की कितनी मात्रा अवशोषित होगी अथवा परावर्तित होगी, इस बात पर निर्भर है कि सतह कैसी है। मौसम विज्ञान की शब्दावली में आपतित (incident) विकिरण की परावर्तितता की प्रतिशतता को अल्बेडो (albedo) कहते हैं जो इस प्रकार मालूम किया जाता है।

$$\text{अल्बेडो} = \frac{\text{परावर्तित विकिरण}}{\text{आपतित विकिरण}} \times 100$$

हिमाच्छादित स्थलों का अल्बेडो वनस्पतिधारी स्थलों अथवा जलीय स्थानों के अल्बेडो से अधिक होता है। ताजी गिरी बर्फ में प्रतिरूपता 75 से 95 प्रतिशत के बीच अल्बेडो होता है। महासागरीय जल में कम अल्बेडो होता है, और यही कारण है कि उनका रंग समीपवर्ती महाद्वीपीय स्थलीय भागों की अपेक्षा अधिक गहरा दिखाई पड़ता है। खुरदरी सतहों का अल्बेडो चिकनी सतहों के अल्बेडो से कम होता है साथ ही हल्के रंग की सतह से गहरे रंग की सतहों की अपेक्षा अधिक परिवर्तन होता है। परावर्तिता आपतित विकिरण के कोण पर भी निर्भर होती है। जब सूर्य की किरणें सतह से कम लंबवत होती हैं तो वह अधिक परावर्तित होती हैं और जब सूर्य विकिरण सतह से लगभग समकोण बनाती हुई होती है तब कम परावर्तित होती है।

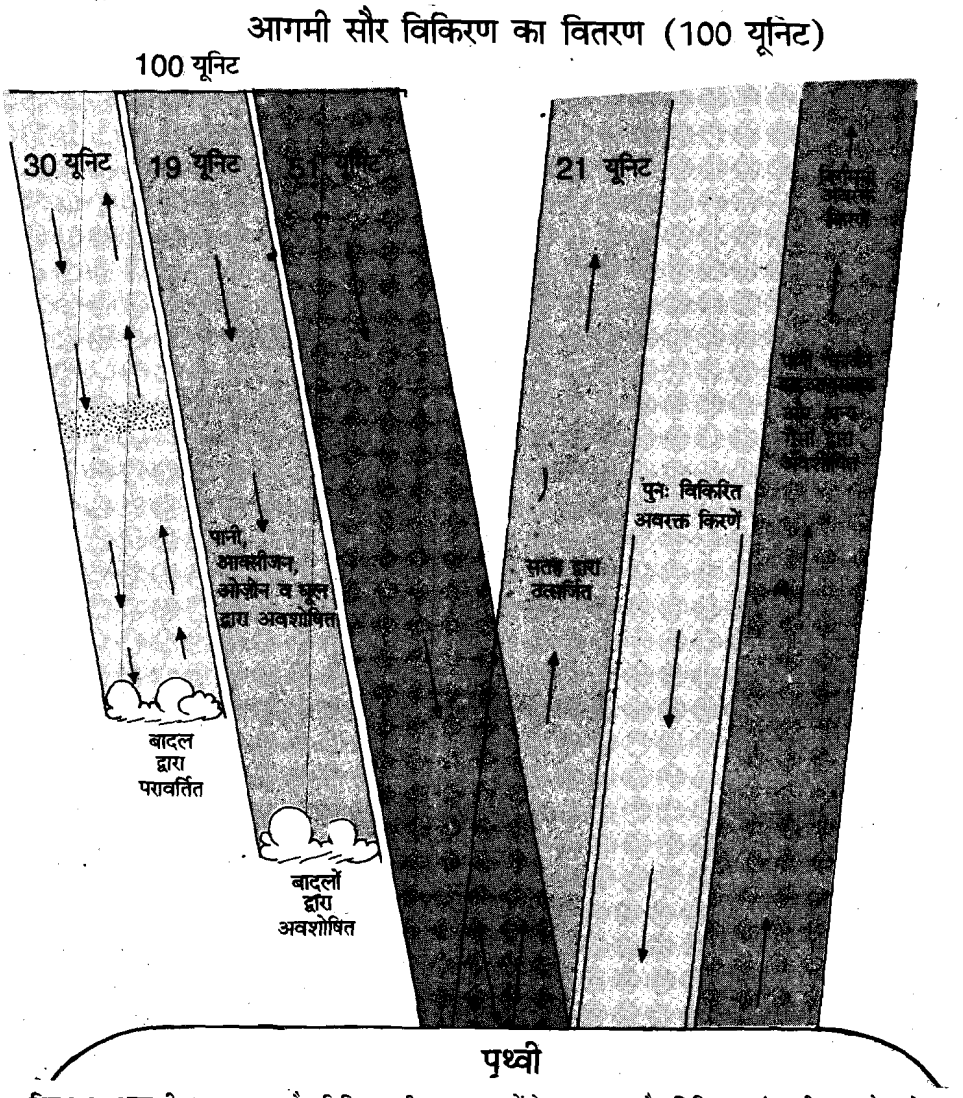

चित्र 2.2 : आगामी (incoming) सौर-विकिरण की 100 इकाइयों के आधार पर सौर-विकिरण एवं धरती पर पड़ने वाले अवरक्त (infrared) विकिरण की भूमंडलीय-व्यवस्था।

हम पढ़ चुके हैं कि जब पृथ्वी और वायुमंडल सौर-विकिरण को प्राप्त करते हैं, उसके कुछ भाग को सोख लेते हैं तथा गर्म हो जाते हैं। हम यह भी जानते हैं कि रात में पृथ्वी ठंडी होती जाती है अतः प्रश्न यह उठता है कि पृथ्वी द्वारा अवशोषित विकिरण ऊर्जा रोज कहां चली जाती है? वास्तव में अवशोषित विकिरण पुनः लगातार पृथ्वी से वापस ऊष्मा के रूप में विकीर्णित होता जाता है, और यह ऊष्मा अवरक्त विकिरण के रूप में वापस अंतरिक्ष में लौटती जाती है। यदि यह ऊर्जा वापस विकीर्णित न होती तो वायु का तापमान हर रोज लगातार बढ़ता ही बढ़ता जाता। चित्र 2.2 को देखिए, अवरक्त विकिरण का अधिकतर भाग वायुमंडल जल-वाष्प, कार्बन डाइआक्साइड तथा अन्य कुछ गैसों द्वारा अवशोषित हो जाता है और इस तरह ये ऊर्जा को अंतरिक्ष में चले जाने से रोकती हैं। इसमें से कुछ अंश पृथ्वी की सतह की ओर को पुनः विकीर्णित हो जाता है और इस तरह भूमंडलीय तापमान को बनाए रखने में सहायता करता है। सौर-विकिरण का समुद्र तल पर मान लगभग 1.5 gc/sq. cm/min. ~ 10,000 fc होता है।

अंग्रेजी में कैलोरी को छोटे c से व किलो कैलोरी को बड़े C से लिखते हैं।

सौर विकिरण जब बादलों से, जल में से तथा वनस्पति में से होकर गुजरता है तब उसका स्पेक्ट्रम वितरण बहुत बदल जाता है। लघु पराबैंगनी (short ultra violet) विकिरण बाहरी वायुमंडल की ओजोन परत से एकाएक कम हो जाता है। दृश्यमान प्रकाश वायुमंडल में अवशोषित होने से काफी हद तक कम हो जाता है। चित्र 2.3 में तीन चीजें दिखाई गई हैं। एक तो वायुमंडल के ऊपर सौर विकिरण का स्पेक्ट्रमी वितरण, दूसरा वायुमंडल में से गुजरने के बाद

साफ मौसम के दौरान पृथ्वी पर पहुंचने का स्पेक्ट्रमी वितरण और तीसरा वनस्पति-आवरण के नीचे का स्पेक्ट्रमी वितरण। इस चित्र को ध्यानपूर्वक देखिए और उसके बाद ही अगले खंड को पढ़ना आरंभ कीजिए।

पृथ्वी पर पहुंचने वाले सौर विकिरण का स्थूल स्पेक्ट्रमी वितरण
दृश्यमान प्रकाश = 39%
अवरक्त = 60%
पराबैंगनी = 1%

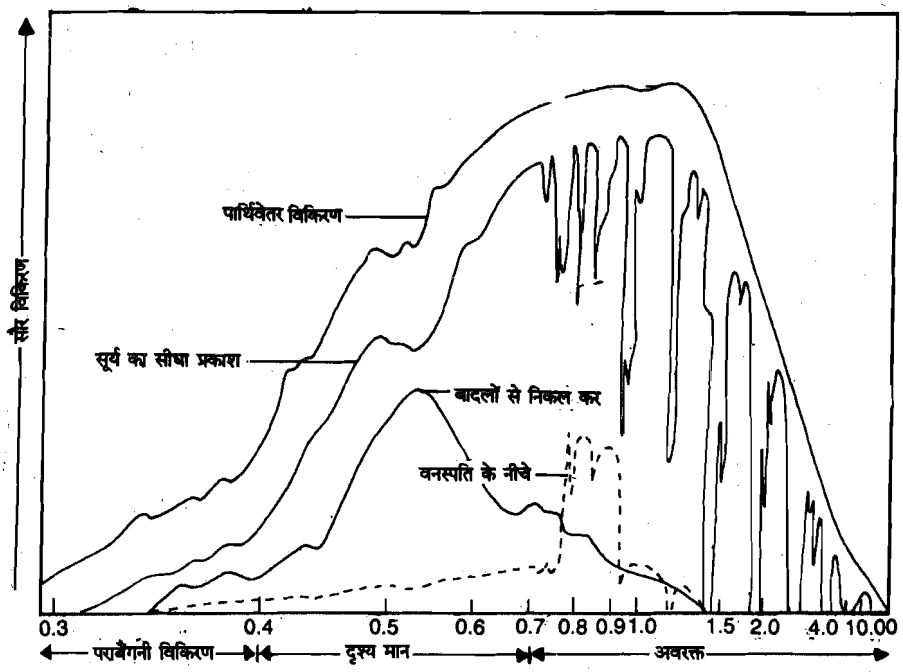

चित्र 2.3 : पृथ्वी पर सौर-विकिरण का स्पेक्ट्रमी-वितरण : साफ मौसम में, बादलों के होने पर, और वनस्पति के नीचे (चित्रण गेट (gates) 1965, पर आधारित)।

2.2.3 विकिरणमापी यंत्र

इस खंड में हम सौर-ऊर्जा, प्रकाश-तीव्रता तथा प्रकाशावधि को मापने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले यंत्रों के विषय में पढ़ेंगे।

सौर-ऊर्जा के निवेश का मापन

सभी तरंगदैर्ध्यों के सौर विकिरणों की ऊर्जा तथा किसी विशिष्ट तरंगदैर्ध्य परास की ऊर्जा को मापने के लिए विविध प्रकार के अनेक यंत्र बनाए गए हैं। पाइरेनोमीटर (चित्र 2.4) द्वारा छोटे तरंगदैर्ध्य के सूर्य प्रकाश की ऊर्जा को, परोक्ष सूर्य प्रकाश की ऊर्जा, और प्रकीर्णित हुए आकाश प्रकाशीय विकिरण की ऊर्जा को मापा जाता है। विकिरण के प्रापक (receiver) में एकांतर क्रम में काली और सफेद पट्टियाँ होती हैं। ये पट्टियां क्रमानुसार गर्म और ठंडे थर्मोकपल

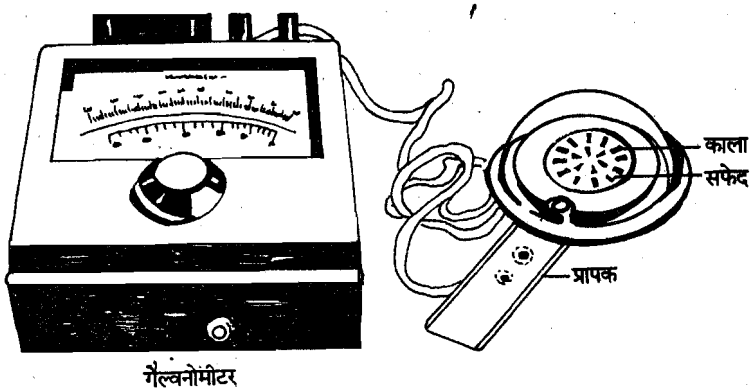

चित्र 2.4 : पाइरेनोमीटर

जंक्शनों के रूप में कार्य करती हैं। यह व्यवस्था काँच के बने एक गोल बल्ब में बंद होती है, यह बल्ब प्रापक-सतह को हवा आदि से होने वाली बाधा से बचाता है। चूंकि यह काँच में बंद होता है, इसलिए प्राप्त होने वाली तरंगदैर्ध्य अनुक्रिया केवल दृश्यमान 280 nm से 3000 nm तक में तरंगदैर्ध्यों तक ही सीमित होती है।

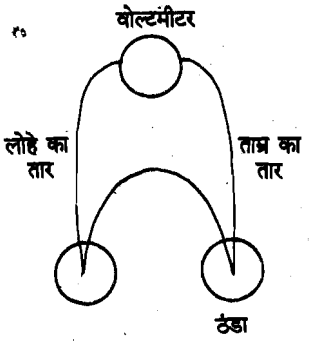

चित्र 2.5 : थर्मोकपल : जब दो अलग-अलग पदार्थों/मिश्र धातुओं के तारों/पट्टियों को परस्पर जोड़ा जाता है तब और जब इन दोनों जंक्शनों को अलग-अलग तापों पर रखा जाता तब उन दोनों के बीच विद्युत-प्रेरक बल पैदा हो जाता है।

प्रापक को जब धूप में रखा जाता है तब काली पट्टियों का ताप बढ़ जाता है, क्योंकि वे अपने ऊपर पड़ने वाले तमाम विकिरणों को सोख लेती हैं, लेकिन सफेद पट्टियाँ ठंडी बनी रहती हैं क्योंकि वे विकिरण को संपूर्णतः परावर्तित कर देती हैं। इस प्रकार यदि हम इन पट्टियों के बीच में थर्मोकपल जोड़ दें तो एक ताप विद्युतप्रेरक बल (thermo-emf) पैदा हो जाता है जैसा कि हाशिए में चित्र 2.5 में दिखाया गया है। गैल्वानोमीटर (चित्र 2.4) की सुई विक्षेपित होती है तथा विद्युत प्रेरक बल को दर्शाती है। इस विधि से प्रापक द्वारा अवशोषित होने वाले विकिरणों को मापा जा सकता है। समान्यतः गैल्वानोमीटर में इस प्रकार पठनांक बने होते हैं कि वे प्रापक द्वारा अवशोषित आपतित विकिरण के प्रति एक लगभग रैखीय वोल्टता-अनुक्रिया को सीधे दर्शाते हैं और इस प्रकार विकिरण को सीधे मापा जा सकता है।

रेडियोमीटर के द्वारा उन सभी तरंगदैर्घ्यों की ऊर्जा के प्रवाह को मापा जाता है जो प्रापक की एक सतह पर प्राप्त होती है। ऐसे भी यंत्र हैं जो नीचे पहुंचने वाले आपतित सौर विकिरण तथा ऊपर को पुनः होने वाले विकिरण परावर्तित के बीच के अंतर को सीधे ही माप सकते हैं और हमें विकिरण का शुद्ध मान दे सकते हैं। ऐसे यंत्रों को नेट (Net) रेडियोमीटर कहते हैं चित्र 2.6 क। इस यंत्र में दो खुली सतहें होती हैं जिन में से एक सतह (x) का रुख ऊपर की तरफ होता है और दूसरी सतह (y) का नीचे की तरफ होता है। इस यंत्र के कार्य करने का सिद्धांत वैसा ही है जैसा कि पाइरेनोमीटर का। इसमें प्रापक एक लंबी पतली काली पोती हुई धातु की पट्टी होती है जिसके दोनों पार्श्वों को सफेद रंगा गया होता है। इस पट्टी के सफेद और काले भाग एक थर्मोकपल से जोड़ दिए जाते हैं।

इस यंत्र में काला प्रापक कांच के ढक्कन से बंद नहीं होता इसलिए यह सभी तरंगदैर्घ्यों के लिए संवेदी होता है। लेकिन प्रापक हवा में खुला होता है इसलिए इस के द्वारा विकिरण के बहुत सही-सही मूल्य नहीं मिल पाते क्योंकि इसकी सतह से कुछ उष्मा संवहन और संचालन के द्वारा वायु में पहुँच जाती है। साथ ही इस पर आर्द्रता का भी प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार की बाधा से बचने के लिए प्रापक के ऊपर से एक स्थिर गति से वायु प्रवाहित की जाती है, या इसको एक ऐसे उपयुक्त पदार्थ से ढक दिया जाता है जो दृश्यमान एवं अवरक्त विकिरणों दोनों के लिए पारदर्शी होता है।

भारत के मौसम विज्ञान विभाग, पूना में सौर विकिरण को ताप विद्युत पाइरेनोमीटर द्वारा मापा जाता है जैसा कि चित्र 2.6 ख में दिखाया गया है। संवेदक काले किये गये तांबे व निकैल का मिश्र धातु थर्मोपाइल से बना होता है। जब यह अनावरित किया जाता है तो इसके द्वारा ताप विद्युत प्रवाह बढ़ जाता है जो आपतित विकिरण के आनुपातिक होता है। यह प्रवाह लगातार रिकार्ड करने वाले मिलीवोल्टमीटर में पहुँचाया जाता है।

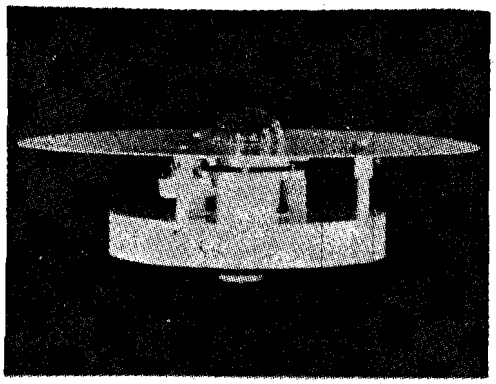

चित्र 2.6 (क) : नेट रेडियोमीटर का चित्र

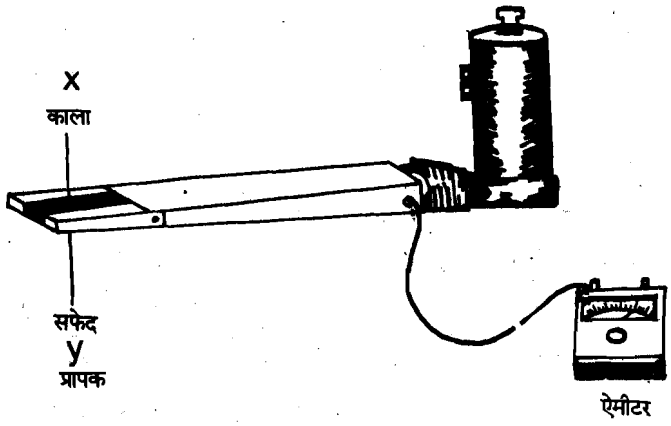

चित्र 2.6 ख : तापविद्युत (Thermoelectric) पाइरेनोमीटर (आभार : भारतीय मौसम विज्ञान विभाग, पूना)

1 फुट-कैंडल = 10.7639 लुक्स मीटर (lm)
हम वस्तुओं को 0.25 फुट कैंडल के प्रकाश में देख सकते हैं और हमें पढ़ने के लिए लगभग 20 फुट कैंडल की आवश्यकता पड़ती है। शीतोष्ण पौधे प्रकाशसंश्लेषण के लिए लगभग 2000 फुट कैंडल प्रकाश का और ऊष्णकटिबंधीय स्पीशीज 8,000 फुट कैंडल अथवा इससे कुछ अधिक प्रकाश का प्रयोग करते हैं। दोपहर को सूर्य का प्रकाश स्वच्छ आकाश में लगभग 10,000 फुट कैंडल होता है।

प्रकाश तीव्रता का मापन

किसी सतह पर पड़ने वाले प्रकाश स्रोत की तीव्रता को किस प्रकार मापा जा सकता है? जैसा कि आप जानते हैं स्रोत से निकलने पर प्रकाश हर दिशा में समान रूप से फैलता जाता है। किसी इकाई क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रकाश की मात्रा बढ़ती दूरी के आधार पर कम होती जाती है। यह कमी प्रकाश स्रोत से दूरी के वर्ग के बराबर होती है। चित्र 2.7 में दर्शाया गया है कि स्रोत से दूरी बढ़ने पर प्रकाश की तीव्रता किस प्रकार घटती जाती हैं।

प्रकाश तीव्रता को लुक्स (lux) या मीटर कैंडल (metre-candle) में मापा जाता है। लुक्स प्रकाश की वह मात्रा है जो एक मापक कैंडल (standard candle) से एक मीटर दूरी पर वक्र सतह (curved surface) के एक वर्गमीटर पर पड़ता है। इससे पहले एक दूसरी इकाई फुट कैंडल (foot candle) इस्तेमाल की जाती थी। फुट कैंडल प्रकाश की वह मात्रा है जो एक मापक कैंडल से एक फुट की दूरी पर वक्र सतह के एक वर्ग फुट पर पड़ती है। फुट कैंडल के विस्तार का अनुमान लगाने के लिए हाशिए में दी गई टिप्पणी को पढ़िए।

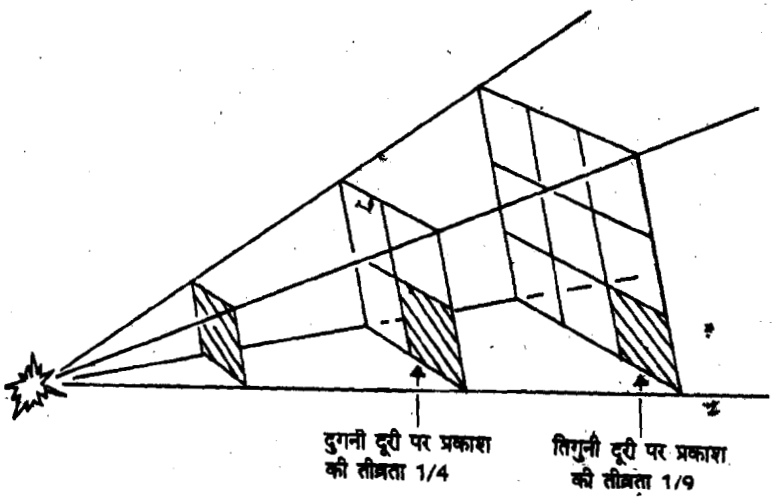

चित्र 2.7 : दूरी के अनुसार प्रकाश की आभासी चमक में आती कमी

फोटोमीटर (चित्र 2.8) से प्रकाश की तीव्रता मापी जाती है। धातु से बनी प्लेट का एक फोटोसेल होता है जिसकी सतह से तब इलैक्ट्रॉन निकलते हैं जब उस पर पर्याप्त बारंबारता का प्रकाश पड़ता है किणणित सतह से लगातार निकलते हुए इलेक्ट्रॉन ही धारा बनाते हैं। इस धारा को संवेदन ऐमीटर से मापा जाता है जो प्रकाश की तीव्रता को मीटर कैंडल में दर्शाने के लिए अशांकित होता है। यंत्र का चलाना बहुत ही आसान है। फोटोसेल वाले यूनिट को प्रकाश की तरफ घुमा दिया जाता है तथा प्रकाश की तीव्रता के मान को ऐमीटर पर पढ़ लिया जाता है।

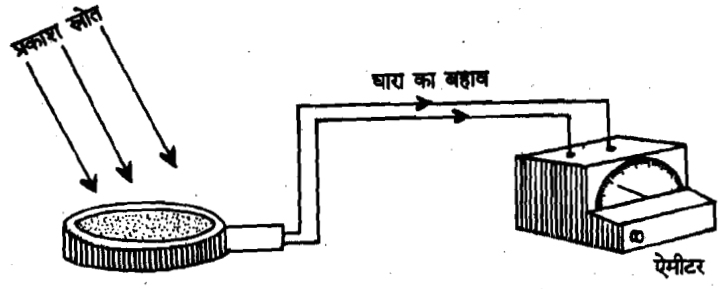

चित्र 2.8 : फोटोमीटर का चित्र

प्रकाश की कालावधि

सनशाईन-रिकॉर्डर (sunshine recorder, चित्र 2.9) से धूप की कालावधि मापी जाती है। इस रिकार्डर का मुख्य भाग कांच का एक गोला होता है जिसका व्यास लगभग 10 से. मी. होता है, यह गोला एक गोलीय धात्विक प्याले पर संकेन्द्रिक रूप में टिका हुआ होता है। प्याले की भीतरी सतह कटी खांचों में एक विशेष कार्ड को कसकर फसाया हुआ होता है। जब सूर्य की किरणें एक दम कार्ड पर केन्द्रित (focus) की जाती हैं तब उनसे कार्ड के कुछ भाग धीरे-धीरे जल जाते हैं और इन्हीं जले हुए अंशों से धूप की कालावधि का परिकलन कर लिया जाता है। अलग मौसम के लिए भिन्न 2 कार्ड होते हैं।

चित्र 2.9 क : सनशाइन रिकार्डर

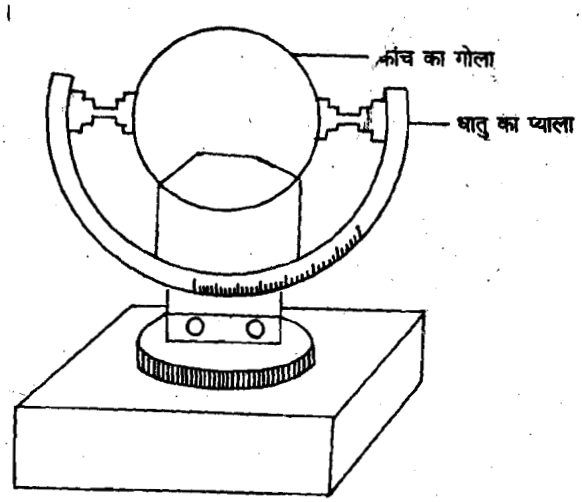

चित्र 2.9 ख : सनशाइन रिकार्डर का फोटोग्राफ

2.2.4 प्रकाश के कालगत परिवर्तन — दैनिक और ऋतुनिष्ठ

हम जानते हैं कि किसी स्थान पर पड़ने वाले विकिरणों की मात्रा में जो दिन और रात संबंधी विविधता आती है वह पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने से ही बनती है, और ऋतुपरक विविधताएँ पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ परिक्रमा करने के कारण आती हैं। चूंकि पृथ्वी का निरक्षीय समतल उसके कक्ष के सापेक्ष 23.27° के कोण पर झुका हुआ होता है, इसलिए सूर्य की किरणें पृथ्वी के प्रत्येक भाग पर सीधे उदग्र रूप में नहीं पड़ती। मार्च 22 से लेकर सितम्बर 22 तक (शरदीय सायन autumnal equinox) पृथ्वी का उत्तरी ध्रुव सूर्य की तरफ झुका हुआ होता है, इसलिए सर्वाधिक तीव्रता वाला सौर-किरण-पुंज उत्तरी गोलार्ध में केन्द्रित होता है। इसलिए इस दौरान उत्तरी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है और उत्तरी ध्रुव पर दिन के चौबीसों घंटे सूर्य निकला रहता है। इसके विपरीत दक्षिणी ध्रुव पर छह महीने रात होती है और दक्षिणी गोलार्ध में शीत ऋतु। ध्रुवों पर इसके विपरीत स्थिति सितम्बर 24 से मार्च 20 (बंसत सायन spring equinox) तक होती है, इन दिनों उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु तथा दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु होती है (चित्र 2.10)।

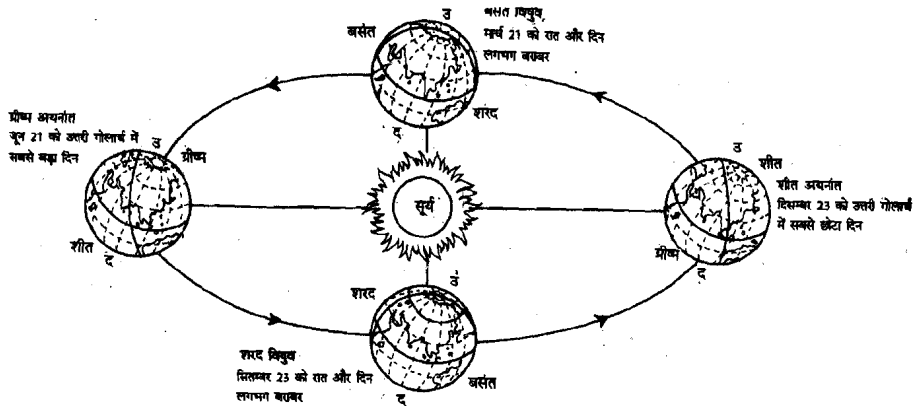

चित्र 2.10 : पृथ्वी पर आने वाले सौर-विकिरण की मात्रा का वार्षिक उतार-चढ़ाव

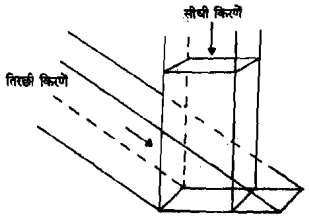

चित्र 2.11 : सौर-विकिरण के आपतित कोण की विविधता। तिरछी किरणों की अपेक्षा सीधी किरणें पृथ्वी की सतह के प्रति इकाई क्षेत्र पर अधिक सौर-विकिरण डालती हैं

पृथ्वी पर विकिरण के वितरण में क्षैतिज विविधता भी पाई जाती है। चूंकि पृथ्वी की आकृति लगभग गोल होती है, इसलिए आने वाले सूर्य के प्रकाश की समानांतर किरणें पृथ्वी के सभी भागों पर सीधे उदग्र रूप में नहीं पड़तीं। आपतित-विकिरण निम्नतर अक्षांशों की अपेक्षा उच्चतर अक्षांशों पर पृथ्वी की सतह पर तिरछा गिरता है, वह अधिक वायुमंडल में से गुजरता है, अधिक बड़े क्षेत्र मे फैल जाता है, और इस तरह यह विकिरण उस विकिरण से कम तीव्र होता है। (चित्र 2.11) जो विषुवत् रेखा (equator) पर या उसके समीप पड़ने वाली उदग्र (vertical) किरणों के कारण होता है।

2.2.5 प्रकाश और जीवों का वितरण

हम शुरू में ही बता चुके हैं कि पृथ्वी के विभिन्न प्रदेशों में प्रकाश की मात्रा विविधता से सामान्यतः पौधों और प्राणियों का भूमंडलीय और स्थानीय वितरण प्रभावित होता है। प्रकाश की एक बहुत बड़ी भूमिका स्पीशीज़ के संघटन में और वनस्पति के विकास में होती है। हम प्रकाश तीव्रता की भूमंडलीय विविधता का पहले ही विवेचन कर चुके हैं। आइए, अब हम स्थलीय तथा जलीय परितंत्रों में प्रकाश-जलवायु (light climate) की विविधता के विभिन्न कारणों का अध्ययन करें। किसी भी एक स्थान की प्रकाश-जलवायु का व्यापक विचार प्राप्त करने के लिए तीन पहलुओं पर सूचना प्राप्त करनी आवश्यक है (1) प्रकाश की तीव्रता अर्थात् प्रति इकाई क्षेत्र में प्रति इकाई काल के दौरान प्रकाश की मात्रा, (2) प्रकाश की गुणवत्ता अर्थात् तरंगदैर्ध्य संघटना, और (3) प्रकाशकालिता अथवा प्रकाश की कालावधि।

पत्ती पर आपतित संपूर्ण विकिरण ऊर्जा का 5 प्रतिशत भाग वाष्पीकरण में परिवर्तित एवं प्रयुक्त हो जाता है, 19 प्रतिशत भाग विकिरण द्वारा समाप्त हो जाता है, 30 प्रतिशत भाग पत्ती की सतह से परावर्तित अथवा संचारित हो जाता है। देखा गया है कि हीलिएंथस की पत्ती को प्रकाश संश्लेषण के लिए 0.42 से 1.66 प्रतिशत तक ही विकिरण ऊर्जा प्राप्त होती है।

स्थलीय पारितंत्रों (terrestrial ecosystem) में प्रकाश-जलवायु में होने वाले महत्वपूर्ण स्थानीय परिवर्तन, वनस्पति का प्रकाश के मार्ग में बाधा बनने के कारण होते हैं। किसी जंगल में अपने पूरे-पूरे फैले छत्र (canopy) वाले ऊंचे वृक्ष सबसे ज्यादा धूप प्राप्त करते हैं और वे आपतित प्रकाश का प्रमुख भाग सोख लेते हैं। यह भाग प्रकाश स्पेक्ट्रम के विशेषतः लाल और नीले क्षेत्रों का होता है। नीचे उग रही झाड़ियाँ और घास-पात केवल वही प्रकाश प्राप्त कर पाती है जो ऊपर से वृक्ष क्षेत्र में से छनकर नीचे पहुँचता है। घने जंगल में बहुतलीय वनस्पति के कारण प्रकाश का अवरोध बहुत कुशलता से ऊपरी पौधे करते हैं। जंगल के फर्श पर पड़ने वाले प्रकाश की तीव्रता, लम्बे पौधों की शीर्ष पत्तियों के छत्र पर पड़ने वाले आपतित और विकीर्णित प्रकाश का केवल एक प्रतिशत अंश ही होती है।

चित्र 2.12 : बहुतलीय वनस्पति में प्रकाश का स्तरीकरण

चयनात्मक अवशोषण के कारण वृक्ष छत्रों में से गुजरते हुए प्रकाश की स्पेक्ट्रम गुणवत्ता भी बदल जाती है। फिर भी हम देखते हैं कि कुछ पादप स्पीशीज ऐसी अल्प प्रकाश-तीव्रताओं में भी पनपने के लिए अनुकूलित हो गई है। कुछ पौधे तेज प्रकाश में अच्छी तरह पनपते बढ़ते हैं और कुछ को अपनी प्राकृतिक वृद्धि के लिए विसृत (diffused) प्रकाश की आवश्यकता होती है—इस आधार पर पारिस्थिति विज्ञानियों ने पौधों को दो वर्गों में बांटा है — सायोफाइट (sciophytes छायाप्रेमी) तथा हीलियोफाइट (heliophytes धूपप्रेमी)। कुछ पौधे साए या तेज प्रकाश की अपनी पसन्द में बहुत पक्के होते हैं, ऐसे पौधों को अविकल्पी (obligate) सायोफाइट अथवा अविकल्पी हीलियोफाइट कहते हैं। कुछ ऐसे पौधे हीलियोफाइट भी हैं जो साए में भी उग सकते हैं, हालांकि इतनी अच्छी तरह से नहीं। ऐसे पौधों को विकल्पी (facultative) सायोफाइट कहते हैं। इसी प्रकार वे सायोफाइट जो तेज प्रकाश में भी उग सकते हैं, विकल्पी हीलियोफाइट कहलाते हैं।

पौधे केवल तभी पनप सकते हैं जब प्रकाश-संश्लेषण में प्राप्त की गई ऊर्जा श्वसन में इस्तेमाल होने वाली ऊर्जा से अधिक होती है। प्रकाश की वह तीव्रता, जिस पर प्रकाश-संश्लेषण द्वारा प्राप्त की गई ऊर्जा बस केवल श्वसन की ऊर्जा आवश्यकता के लिए पर्याप्त होती है, उसे प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु (light compensation point) कहते हैं। वृक्षों के नीचे सघन साए में प्रकाश की मात्रा उतनी पर्याप्त नहीं होती कि वहां के पौधों की तात्कालिक ऊर्जा आवश्यकता की पूर्ति प्रकाश संश्लेषण द्वारा हो सके। अतः उनकी पत्तियाँ और कुछ शाखाएँ भी गिर जाती हैं। वृक्ष की पत्तियाँ स्वयं को इस प्रकार व्यवस्थित कर लेती हैं कि वे प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु के ऊपर कार्य करती है। अभी तक हमने स्थलीय पारितंत्रों में स्पीशीज़ के वितरण पर प्रकाश के प्रभाव का विवेचन किया है। आइए, अब हम जलीय पारितंत्रों में प्रकाश के वितरण को देखें।

लाल शैवालों में एक पूरक वर्ण फाइकोएरिथरिन (phycoerythrin) होता है जिसके द्वारा वे हरे तरंगदैर्ध्य की ऊर्जा का उपयोग भोजन बनाने में कर सकते हैं और अधिक गहराइयों में जीवित रह सकते हैं।

पानी की गहराई बढ़ते जाने के साथ प्रकाश तीव्रता के उदग्र स्तरीकरण (vertical stratification) और साथ ही उसके स्पेक्ट्रम-गुणवत्ता में होने वाले परिवर्तन इसलिए होते हैं कि प्रकाश का जल में अंतर्वेधन सीमित होता है। सामान्यतः जल में लगभग 30 मीटर की गहराई तक सूर्य के प्रकाश का केवल एक प्रतिशत से भी कम भाग ही पहुँच पाता है। जल में गाद, मिट्टी, विलेय पदार्थों, प्लवक जीवों (plankton) तथा निलंबित पदार्थों के होने से प्रकाश का अंतर्वेधन और भी कम हो जाता है। ऐसे पदार्थों से प्रकाश की तीव्रता में काफी कमी आ जाती है और प्रकाश की गुणवत्ता भी बदल जाती है। यदाकदा, डकवीड (duckweed) जैसे पौधे, जो कि जल की सतह पर मुक्त तैरते रहते हैं, आने वाले प्रकाश को रोकते हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं शुद्ध जल भी प्रकाश का तीव्र दर से अवशोषण करता है और इसलिए उसके स्पेक्ट्रमी वितरण में बहुत परिवर्तन करता है। लाल और नीले तरंगदैर्ध्य की किरणें रह जाती हैं तथा शेष हरा प्रकाश ही अधिक गहराई तक पहुंच जाता है।

हम जानते हैं कि प्रकाश संश्लेषण की मात्रा का सीधा संबंध प्रकाश की तीव्रता से होता है और इस प्रकार जल में प्रकाश क्षतिपूर्ति बिंदु एक निश्चित गहराई पर आता है जिसे क्षतिपूर्ति गहराई (compensation depth) कहते हैं। इस गहराई से ऊपर और नीचे के क्षेत्रों को क्रमशः प्रकाशी क्षेत्र (photic zone) तथा अप्रकाशी क्षेत्र (aphotic zone) कहते हैं।

झील में तीन क्षेत्र होते हैं, जैसा कि चित्र 2.13 में दिखाया गया है। लिटोरल क्षेत्र (littoral zone) में झील के वे सभी क्षेत्र आते हैं जिनमें प्रकाश झील की तली तक पहुँचता है और जहाँ जलीय पौधों, जलीय प्राणियों और विघटकों (decomposers) की वृद्धि होती रहती है। प्रोफुंडल क्षेत्र (profundal zone) में ऐसे क्षेत्र भी होते हैं जो इतने गहरे होते हैं कि उनमें प्रकाश संश्लेषण के लिए प्रकाश नहीं पहुँच पाता। यह क्षेत्र क्षतिपूर्ति गहराई के नीचे होते हैं। लिम्नेटिक क्षेत्र (limnetic zone) प्रोफुंडल क्षेत्र के ऊपर खुला धूप से प्रकाशित जल वाला क्षेत्र होता है। यह क्षेत्र लिटोरल क्षेत्र के आगे विस्तृत होने वाला क्षेत्र है। इस क्षेत्र में छोटे, स्वछंद तैरने वाले प्लवक पाए जाते हैं, खास तौर से पादप-लवक (phytoplankton)।

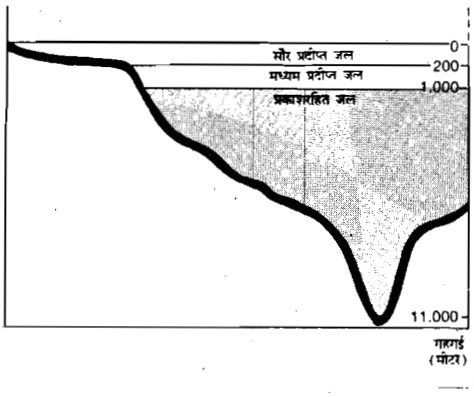

चित्र 2.13 : प्रकाश के अंतर्वेधन के अनुसार झील के विभिन्न क्षेत्र

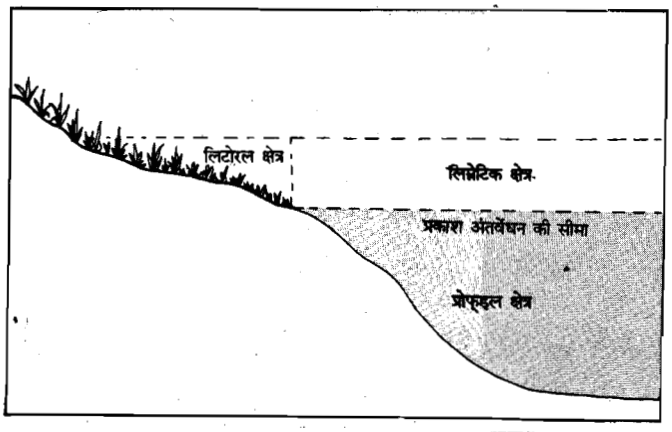

चित्र 2.14 : महासागर में विभिन्न गहराइयों पर प्रकाश का अंतर्वेधन

समुद्री जीवों की वितरण-व्यवस्था के नियमन में प्रकाश एक महत्वपूर्ण कारक है। चित्र 2.14 में महासागर की वे अलग-अलग गहराइयां दिखाई गई हैं जिन पर प्रकाश का अंतर्वेधन होता है।

2.2.6 प्रकाशकालिता

प्रकाशकालिता की जानकारी की बहुत बड़ी व्यावहारिक उपयोगिता है, क्योंकि इसी के आधार पर पौधों की खेती के लिए उचित स्पीशीज़ का बीज और ऋतुओं को चुना जाता है।

प्राणियों में अनेक क्रियाकलाप जैसे कि प्रजनन (breeding) एवं प्रवसन (migration) पौधों का पुष्पन एवं बीजों का अंकुरण आदि, नियमन प्रकाश और अंधेरे की दैनिक कालावधियों के द्वारा होता है। प्रकाशकाल संबंधित व्यावहारपरक परिघटना को प्रकाशकालिता (photoperiodism) कहते हैं। उदाहरण के लिए मूली, आलू और पालक में तब पुष्पन होता है जब प्रकाश की कालावधि 12 घंटे प्रति दिन से अधिक होती है। ऐसे पौधों को दीर्घप्रदीप्तिकाली पौधे (long day plant) कहते हैं।

गेंहू, तंबाकू, डहेलिया तथा कई अन्य पौधों में तभी पुष्पन होता है जब प्रकाश की कालावधि 12 घंटे प्रति दिन से कम होती है। यानि कि रात 12 घंटे से अधिक हो। ऐसे पौधों को अल्प प्रदीप्तिकाली पौधे (short day plant) कहते हैं। इस प्रकार की अनुक्रियाओं से सिद्ध होता है कि पौधों के अन्दर ऐसी विशेष क्रियाविधि है जो प्रकाश और अंधेरे के काल को नापती है और यही कारण है कि पौधों में विशिष्ट ऋतुओं में ही फूल लगते हैं।

इसी प्रकार की प्रकाशकालिक अनुक्रियाएँ प्राणियों में भी देखने को मिलती हैं। वे अनुक्रियाएँ दिवापरक (diurnal) चांद्रपरक (lunar) अथवा वार्षिक (annual) हो सकती है। पक्षियों में प्रजनन तथा उनका प्रवास ऐसी ही वार्षिक प्रकाशकालिक अनुक्रिया के उदाहरण हैं। ऐसी ही अनुक्रियाओं के अध्ययन से लगता है कि कुछ पौधों और जानवरों का वितरण आवश्यक प्रकाशकालिक उद्दीपन के कारण सीमित होता है और तभी वे कुछ विशिष्ट अक्षांशों में ही पाए जाते हैं।

अब आप निम्नलिखित बोध प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

बोध प्रश्न 2

क) निम्नलिखित कथनों में से गलत शब्दों को काटिए।

i) किसी वस्तु की चमक इस बात पर निर्भर करती है कि उस पर पड़ रहे प्रकाश को वह कितना (अवशोषित/परावर्तित) करती है।

ii) किसी सतह पर आपतित विकिरण का कोण जितना अधिक होगा, उस सतह से उतना ही (अधिक/कम) परावर्तन होगा।

iii) सौर ऊर्जा की मात्रा जो (मार्ग में पृथ्वी से रुकती है/वायुमंडल के सबसे ऊँचे भाग पर पड़ती है) को सौर-स्थिरांक कहते हैं।

iv) जब आपतित सौर-किरण पुंज किसी सतह पर उदग्रत: (vertically)/तिर्यक्‌त: (obliquely) पड़ता है तब उस किरण पुंज में तीव्रता (अधिक/कम) होती है।

v) अल्पप्रदीप्ति पौधों को बारह घंटे से (कम/ज्यादा) प्रकाश कालावधि की आवश्यकता होती है।

vi) (अवरक्त/पराबैंगनी) विकिरण को ओजोन परत रोक देती है।

vii) (अवरक्त/दृश्यमान) विकिरण मेघावरण में से गुजर सकता है।

viii) दृश्यमान/अवरक्त प्रकाश वायुमंडल में अवशोषित होने पर मोटे तौर पर घट जाता है।

ख) कॉलम 1 में दिए गए कथनों का कॉलम 2 में दिए गए शब्दों से मिलान कीजिए :

कॉलम 1	कॉलम 2
i) सायोफाइट जो चटक धूप में भी उग सकते है।	क) अविकल्पी हीलियोफाइट
ii) चटक धूप में पनपने वाले पौधे	ख) हीलियोफाइट
iii) छायादार जगहों में पनपने वाले पौधे	ग) सायोफाइट
iv) वे पौधे जिन्हे चटक धूप में नहीं उगाया जा सकता है।	घ) विकल्पी सायोफाइट

ग) कॉलम 1 में दिए यंत्रों को कॉलम 2 से मिलाइए।

कॉलम 1	कॉलम 2
i) फोटोमीटर	क) निम्न तरंगदैर्घ्य और नभ प्रकाश विकिरण में ऊर्जा
ii) नेट रेडियोमीटर	ख) प्रकाश की तीव्रता
iii) पाइरेनोमीटर	ग) नीचे आ रहे आपतित सौर विकिरण की ऊर्जा और ऊपर की ओर परावर्तित पुन: विकीर्णित ऊर्जा के बीच का अंतर
iv) सनशाइन रिकार्डर	घ) दिन के दौरान प्रकाश तीव्रता में उतार चढ़ाव

अब चूंकि आप इस खंड को पूरा कर चुके है, अब समय है थोड़ा सुस्ता लेने का। अगर चाहें तो एक प्याला चाय पी लीजिए।

2.3 तापमान

तापमान एक प्रमुख पर्यावरण कारक है। इसके द्वारा जीवधारियों के जीवन में आवश्यक क्रियाकलाप प्रभावित होते हैं जैसे कि चयापचय (metabolism) वृद्धि, तथा प्रजनन। ताप का प्राथमिक प्रभाव एंजाइमों (enzymes) की स्थिरता और उनकी क्रियाशक्ति पर पड़ता है। हम जानते हैं कि एंजाइम कोशिकाओं के भीतर होने वाली जैव-रासायनिक क्रियाओं को चलाते हैं और उनका नियमन करते हैं। इसके अलावा अधिक तापमान से एंजाइम नष्ट हो जाते हैं। तापमान के द्वारा जैव झिल्लियों के गुण-धर्म भी प्रभावित हैं।

तापमान, गतिज ऊर्जा अथवा अणुओं की गति की ऊर्जा का लगभग माप होता है। किसी पदार्थ के अणु जितनी तेजी से गति करते हैं, उस पदार्थ का तापमान उतना ही अधिक होता है। किसी भी पदार्थ की उष्मा उसके द्वारा दी गई संपूर्ण आण्विक ऊर्जा की मात्रा होती है। इसे कैलोरी मे मापा जाता है। तापमान, आपेक्षिक उत्तापन (relative heating) के वर्णन करने का एक सुविधाजनक तरीका है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी के विभिन्न स्थानों के तापों में बहुत अंतर है जिनके प्रति जीवधारियों को अनुकूलित होना बहुत जरूरी है। किसी क्षेत्र में किस प्रकार के पौधे और प्राणी पनप सकते हैं, जीवित रह सकते हैं और प्रजनन कर सकते हैं, यह उस क्षेत्र के तापमान और पानी की उपलब्धता पर ही बहुत हद तक निर्भर होता है। प्रत्येक जीवधारी के द्वारा तापमान को सह सकने की एक निश्चित सीमा होती है, इस सीमा का सबसे ऊंचा और सबसे नीचा तापमान घातक होता है। यह सीमा अलग-अगल स्पीशीज़ के लिए अलग-अलग होती है। इस प्रकार तापमान उन कारकों में से एक कारक है जो पौधों और प्राणियों के भौगोलिक वितरण को सीमित करता है। तापमान से ही परोक्ष रूप में जल की उपलब्धता भी प्रभावित होती है और जल स्वयं एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय कारक है। तापमान बलाघात के प्रति जीवधारियों में होने वाले अनुकूलनों का वर्णन करने से पहले, आइए विभिन्न अक्षांशों (latitudinal) तथा तुंगताओं (altitudinal) पर ताप विभिन्नताओं का विवेचन करें और तापमान की भूमंडलीय तस्वीर को देखें।

2.3.1 अक्षांशीय परिवर्तन

पृथ्वी पर पाए जाने वाले अक्षांशीय तापमान की विविधता दो मुख्य परिवर्तनों के कारण पैदा होती है :

1) सूर्य से आ रही विकिरण और

2) थल एवं जल-संहतियों (land and water masses) का वितरण

क्या आप सोच सकते हैं कि तापमान को प्रभावित करने वाला कोई अन्य कारक है?

अन्य कारक हैं, हवा और पानी की गति तथा पहाड़ियों और पर्वतों के ढलानों की दिशाएं, जो तापमान को बदलती हैं।

हम जानते हैं कि उच्चतर अक्षांशों पर दिन और रात के अवधिकाल में फर्क ज्यादा होता है यानि वहाँ सूर्य से आने वाले विकिरण की मात्रा वर्ष भर बदलती रहती है। फिर भी अगर हम औसत मान कर परिकलन करें तो पृथ्वी के प्रत्येक बिंदु पर हर वर्ष दिन के प्रकाश की कुल घंटों की अवधि एक ही होती है—प्रतिदिन औसत बारह घंटे दिन और बारह घंटे रात। फिर भी सभी जगह ऊष्मा की मात्रा बराबर नहीं होती क्यों? यह उष्मा की मात्रा प्रति इकाई क्षेत्र में प्रति घंटे पड़ने वाली विकिरण ऊर्जा की मात्रा पर निर्भर होती है और जैसा कि हमने पढ़ा है यह विकिरण ऊर्जा आने वाली धूप के कोण पर निर्भर करती है। पिछले खंड में आप पढ़ चुके हैं कि उदग्र (vertical) किरण पुंज अधिक तीव्र होता है और उच्चतर अक्षांशों पर पड़ने वाला तिर्यक् (oblique) किरण पुंज कम तीव्र। अतः हम देखते हैं कि क्षैतिजशः बढ़ते जाते अक्षांशों पर प्रति इकाई क्षेत्र पर आपतित विकिरण ऊर्जा की मात्रा धीरे-धीरे घटती जाती है। आइए, अब जरा बाहर निकल जाने वाले अवरक्त (infrared) विकिरण का भी हिसाब ले लें। चित्र 2.15 में दिए गए वक्रों को देखें जिनमें विविध अक्षांशों पर अवशोषित सौर विकिरण तथा बाहर जाने वाले अवरक्त विकिरणों की तुलना की गई है। आप देखेंगे कि निम्नतर अक्षांशों पर अवशोषण के द्वारा उष्मायन की दर ज्यादा है जबकि बाहर जाने वाले अवरक्त विकिरणों द्वारा शीतलन की दर कम है।

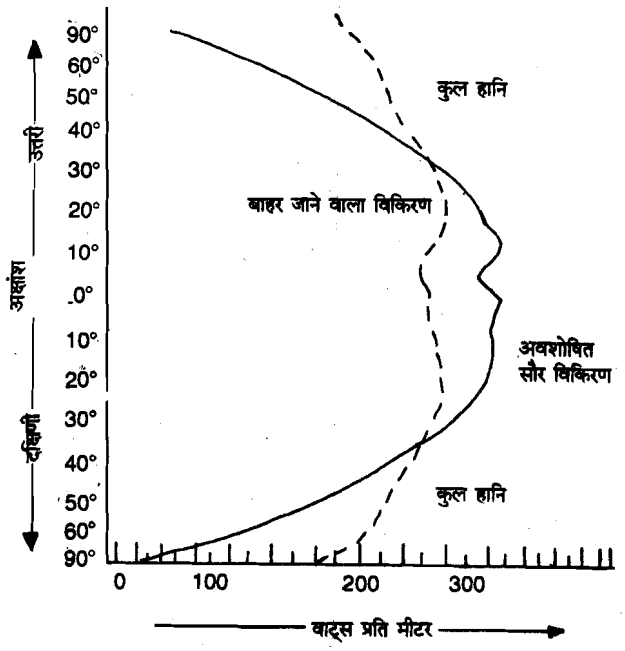

चित्र 2.15 : अवशोषित सौर विकिरण तथा बाहर जाने वाला अवरक्त विकिरण विभिन्न आक्षाशों पर

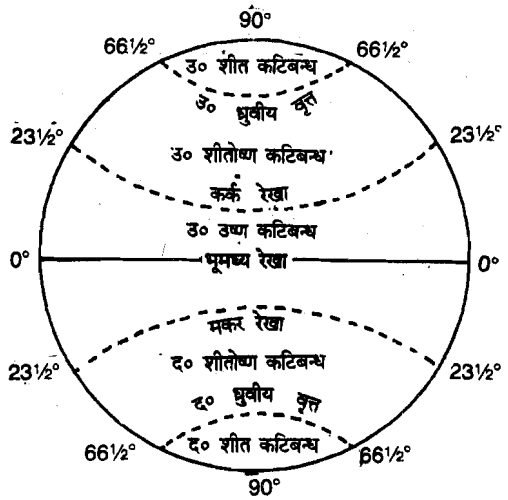

चित्र 2.16 : विभिन्न ताप क्षेत्र

दूसरी तरफ उच्चतर अक्षांशों में इससे उल्टा होता है—वहां अवशोषण की दर की अपेक्षा शीतलन की दर कहीं ज्यादा होती है। लगभग 28° N तथा 33° S के लगभग ऊपर शीतलन और उष्मायन दर बराबर है। विषुवत रेखा की तुलना में ध्रुवों पर प्राप्त होने वाली विकिरण ऊर्जा केवल लगभग 40 प्रतिशत ही होती है। विभिन्न अक्षांशों पर ऊष्मा परिवर्तन दो और कारणों से भी होते हैं—गर्म और ठंडी जल संहतियों (water masses) की गति तथा ठंडी और गर्म महासागरीय धाराओं (warm ocean currents) का परस्पर विनिमय।

विभिन्न अक्षांशों पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के अलावा हम देखतें हैं कि एक ही अक्षांश पर अलग-अलग स्थान के तापमानों में भी काफी अंतर होता है। उदाहरण के लिए भारत में कलकत्ता और नागपुर एक ही अक्षांश पर स्थित हैं, लेकिन कलकत्ता के तापमान में, समुद्र की निकटता के कारण, अधिक उतार-चढ़ाव नहीं होते। तालिका 2.1 में इन दो स्थानों के तापों की तुलना की गई है।

तालिका 2.1

एक ही अक्षांश ~22° N पर स्थित कलकत्ता (समुद्र तट के नजदीक) और नागपुर (समुद्र तट से सुदूर) के अधिकतम और न्यूनतम तापमानों की तुलना

माह	कलकत्ता		नागपुर	
	उच्चतम तापमान	न्यूनतम तापमान	उच्चतम तापमान	न्यूनतम तापमान
जनवरी	26	12	29	13
फरवरी	29	15	33	15
मार्च	34	20	36	19
अप्रैल	36	24	40	24
मई	36	26	43	28
जून	34	26	38	27
जुलाई	32	20	31	24
अगस्त	32	26	30	24
सितम्बर	32	26	31	23
अक्तूबर	31	24	32	20
नवम्बर	29	18	30	14
दिसम्बर	27	13	29	12

क्या आप जानते हैं कि यह अंतर क्यों है? ऐसा इसलिए है क्योंकि थल और जल उष्मा को अलग-अलग तरीके से अवशोषित करते हैं और इसी के कारण एक ही अक्षांश पर अधिक अंतर पैदा हो जाते हैं। थल के स्थानों, क्षेत्रों अथवा केन्द्रों पर तापमान के दैनिक दिवापरक एवं ऋतुपरक उतार-चढ़ाव ज्यादा होते हैं। स्कूल में आपने इस बारे में भूगोल विषय में अध्ययन किया होगा।

ताप-विभिन्नता के आधार पर प्रत्येक भूगोलार्ध (hemisphere) में तीन स्पष्ट उष्मा क्षेत्र देखे जा सकते हैं। चित्र 2.16 गर्म उष्ण क्षेत्र विषुवत् रेखा के समीप हैं। मध्यम अथवा शीतोष्ण क्षेत्र बीच में हैं और ठंडे क्षेत्र ध्रुवों पर हैं। प्रत्येक क्षेत्र में वहां की प्रतिरूपी पादप और प्राणी समष्टियाँ पाई जाती हैं।

2.3.2 तुंगीय परिवर्तन

आप जानते हैं कि बढ़ती जाती तुंगता के साथ तापमान घटता जाता है। ऐसा मुख्यतः ट्रोपोस्फियर में संवहनी धाराओं (convection currents) के कारण होता है। ट्रोपोस्फियर पृथ्वी के वायुमंडल का सबसे निचला और सबसे सघन क्षेत्र होता है। वायुमंडल के विभिन्न क्षेत्रों के विषय में आप खंड 2.4.2 में पढ़ेंगे। जैसा कि हम जानते हैं, पृथ्वी की सतह सौर-विकिरण के कारण गर्म होती है, और इससे ही सतह के तुरन्त संपर्क में आने वाली हवा गर्म हो जाती है। इसी के कारण संवहनी धाराएं पैदा हो जाती हैं जो हवा को लगातार निचले क्षेत्रों से ऊपर वाले क्षेत्रों में और ऊपर वाले क्षेत्रों से नीचे के क्षेत्रों में लाती ले जाती हैं और यह तब होता है जब समुद्र स्तर से वायु ऊपर उठती हुई ऊपरी वायुमंडल में जाती है जहाँ कि दबाव कम होता है तो कम दबाव के कारण हवा फैलती है यानि उसका आयतन बढ़ जाता है। फैलते समय वायु के अणु सहवर्ती अणुओं को पीछे धक्का देते हैं। ऐसा होने में अणुओं की गतिज ऊर्जा (kinetic energy) समाप्त हो जाती है और यही वह ऊर्जा होती है जो ताप में कमी आने के रूप में परिलक्षित होती है। जब गैस-अणु नीचे आ रहे होते हैं तब उनके संपीड़ित (compressed) हो जाने से उन्हें उतनी ही ऊर्जा फिर से प्राप्त हो जाती है और इस तरह तापमान बढ़ जाता है। तापमान में होने वाले इस प्रकार के परिवर्तन को, जिसमें उस तंत्र (system) तथा उसके परिवेश (surrounding) के बीच ताप में ना तो कोई बढ़ोतरी होती है और न ही कोई ह्रास, इसे एडाइबेटिक परिवर्तन (adiabetic change) कहते हैं।

2.3.3 भूमंडलीय तापमान

आइए, अब हम भूमंडलीय तापमान को चित्र 2.17 में देखें। विश्व के समतापरेखीय मानचित्र में पृथ्वी पर पाए जाने वाले वार्षिक औसत तापमान की व्यवस्था दर्शायी गई है। इसमें हम देखते है कि महाद्वीपीय बल-संहतियों में अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत तापमान परास पाए जाते हैं। दक्षिण गोलार्द्ध में उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा अधिक जल संहति है इसलिए इसमें कम तापमान परास है। चित्र 2.18 में भारत के नगरों का वार्षिक औसत तापमान दिखाया गया है।

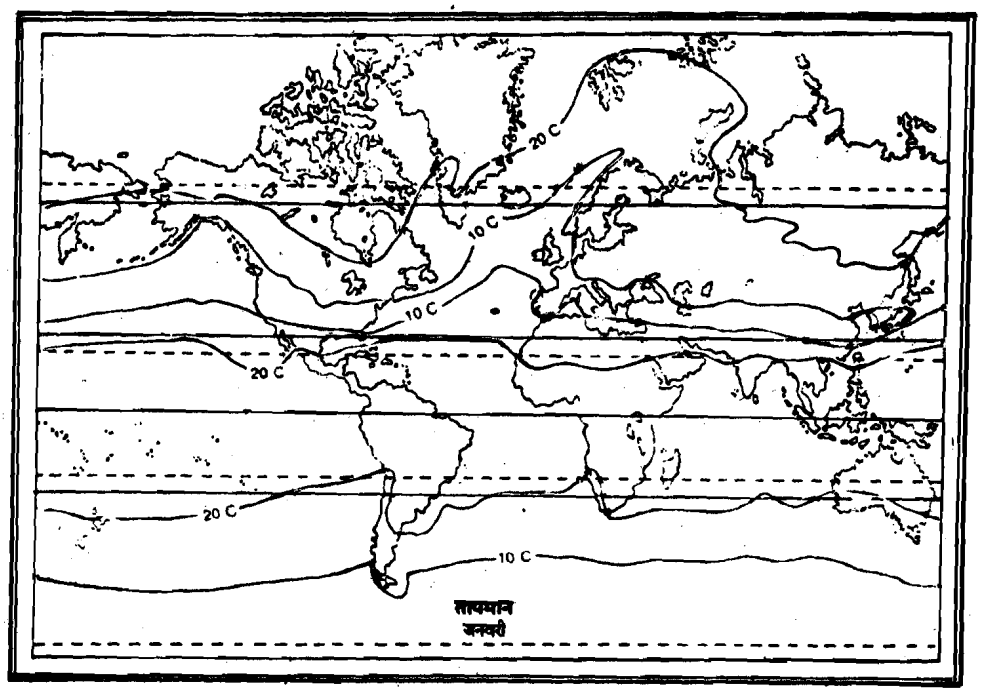

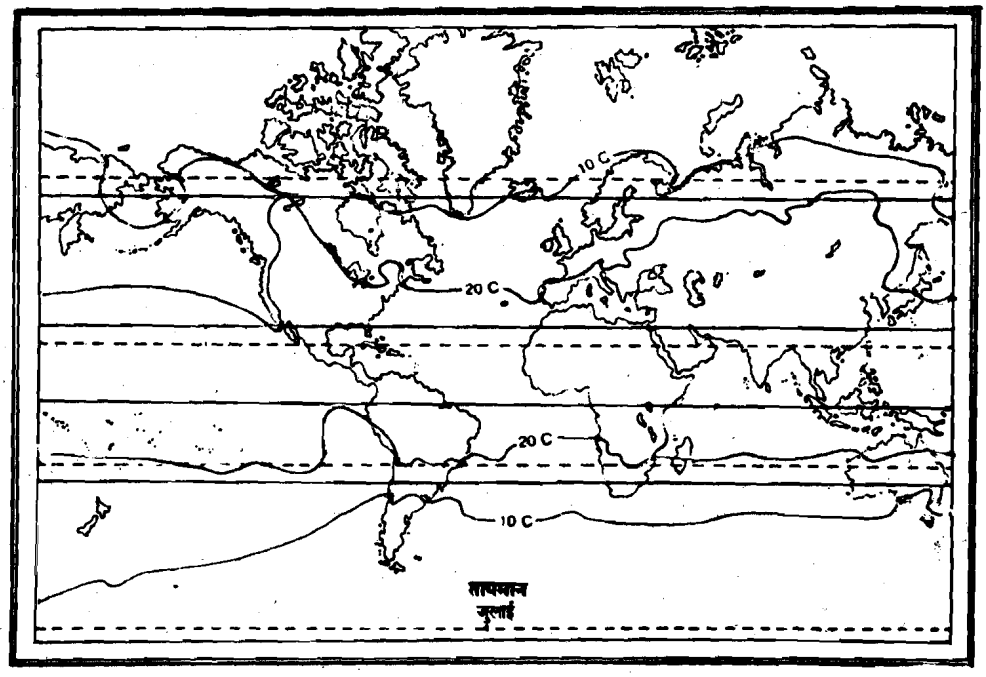

चित्र 2.17 : विश्व का समताप रेखा मानचित्र

दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेश की मछली ट्रीमेटोमस बरनाकी (Trematomus Bernacchi) की तापमान सहनशीलता बहुत सीमित होती है। करीबन 4°C, -2 से + 2° C — के परास में। इस प्रकार यह अतिसंकीर्ण ताप में ठंड के लिए अनुकूलित है।

2.3.4 तापमान-बलाघात

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि जल के साथ मिलकर तापमान जीवधारियों के भौगोलिक वितरण और उनके प्रसार को बहुत महत्वपूर्ण तरीके से प्रभावित करता है। प्रत्येक जीवधारी एक निश्चित तापमान परास में ही सीमित होता है और यह परास अलग-अलग स्पीशीज़ में काफी भिन्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में कहें तो, तापमान की एक ऊपरी

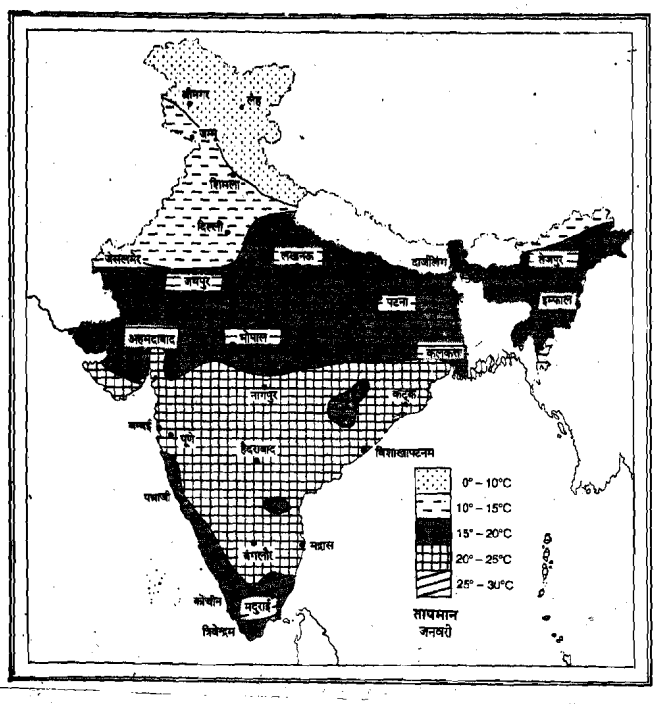

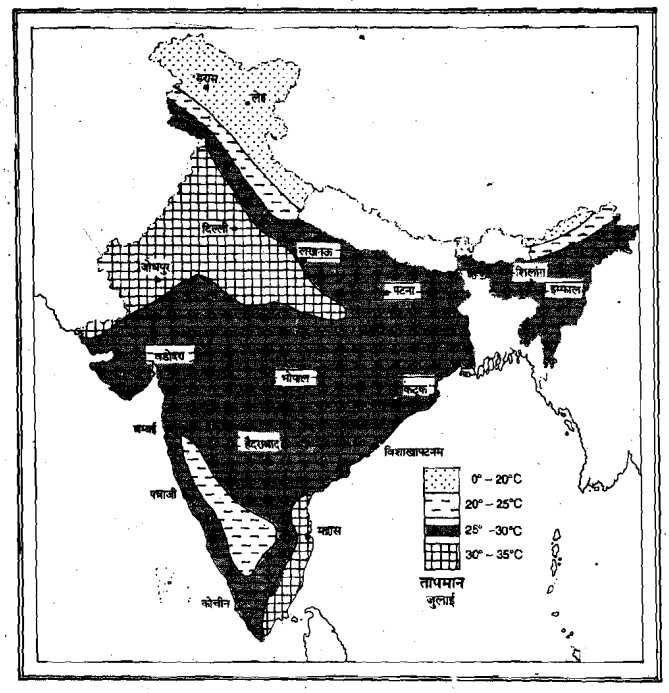

चित्र 2.18 : भारत में औसतन वार्षिक तापमान (यह मानचित्र राजनीतिक सीमाएं नहीं दर्शाते

घातक सीमा (upper lethal limit) और एक निचली घातक सीमा (lower lethal limit) होती है। इन तापों से परे कोई निर्दिष्ट जीव अपनी सामान्य जीवन-क्रियाएं नहीं चला सकता उसमें अनिवार्य (irreversible) क्षति हो सकती है या मर भी सकता है।

उच्चतम तथा न्यूनतम घातक तापमान तथा अनुकूलन तापमान को मुख्य आधारी तापमान (cardinal temperature) कहते हैं। और ये तापमान हर स्पीशीज़ में अलग-अलग होते हैं। कुछ जीवों में उच्चतम व न्यूनतम तापमान में बहुत कम अंतर होता है उन्हें संकीर्णतापी जीव (stenothermal) कहते हैं। अन्य जीवों में इन तापमानों को सहन करने की सीमाएं फैली होती हैं। इन्हें विस्तृत तापी (eurythermal) जीव कहते हैं। इसके अतिरिक्त जीवों में वृद्धि परिवर्धन और प्रजनन के लिए अलग-अलग अनुकूलतम तापमान भी होते हैं, यानि विशिष्ट तापमान पर ही वे अपनी विशिष्ट शरीर-क्रियाओं को अधिकतम कुशलता से चला सकते हैं। स्थलीय जैविक समुदायों की विशिष्टताओं का निर्धारण, तापमान और वर्षा द्वारा होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भूमंडल में जो विभिन्न बायोम (biomes) फैले होते हैं

वे तापमान के अनुरूप फैले हैं। तापमान स्वयं भी अन्य कारकों द्वारा प्रभावित होता है तथा अन्य कारकों को प्रभावित करता है। चूंकि तापमान तुंगता एवं अक्षांश के अनुसार बदलता है, इसलिए विषुवत् रेखा से उच्चतर अक्षांशों की ओर पाई जाने वाले वनस्पति की विविधता कुछ-कुछ वैसी ही होती है जैसी कि मैदानों से उच्चतर तुंगताओं के बीच पाई जाती है। यह बात चित्र 2.20 में दर्शायी गई है।

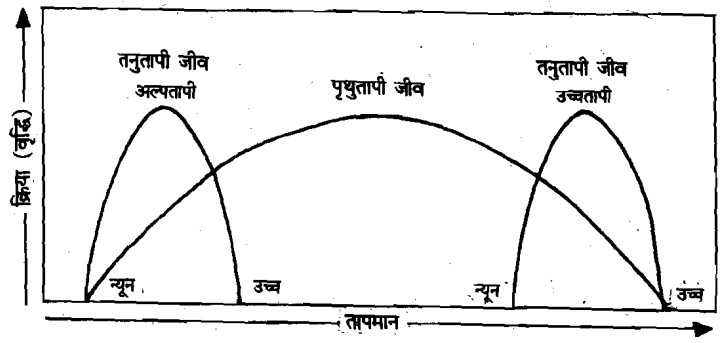

चित्र 2.19 : स्टीनोथर्मल (stenothermal और यूरीथर्मल (eurythermal) जीवधारियों की क्षमता-सीमाएं। स्टीनोथर्मल स्पीशीज़ में अधिकतम, न्यूनतम तथा अनुकूलतम सीमाएं एक बहुत ही संकीर्ण परास में पाई जाती हैं। यूरीथर्मल स्पीशीज़ में तापमान-सहनशीलता का एक बड़ा परास पाया जाता है।

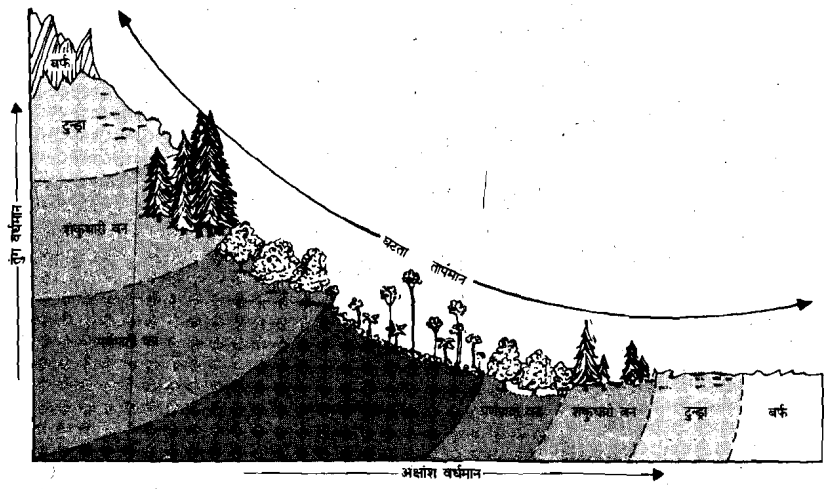

चित्र 2.20 : वनस्पति के क्षेत्र, तुंगता के साथ ठीक उसी प्रकार बदलते जाते हैं जैसे कि अक्षांशों के साथ। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वनस्पति का निर्धारण अंशतः तापमान से भी होता है। दूसरा अन्य कारण वर्षा है।

विभिन्न भू-प्रदेशों में पाए जानेवाले बायोमों का नाम उनमें पनप रहे वनस्पति के प्रकार के अनुसार दिया गया है, जैसे शंकुधर वन (coniferous forests), पर्णपाती वन (deciduous forests), घासी मैदान (grasslands), सवाना (savanna) आदि। मरुस्थल और टुंड्रा में चरम तापमान अनुभव किए जाते हैं। ऐसे बायोमों के जीव तापमान सध्य की सीमाओं पर जीवित रहते हैं। आइए, अब हम बायोमों में रहने वाले जीवधारियों पर पड़ने वाले तापमान बलाघात का वर्णन करें।

चरम गर्मी और सर्दी

संसार के विशालतम मरूस्थल विषुवत् रेखा के उत्तर और दक्षिण दोनों ओर लगभग 30° अक्षांश तक फैले पाये जाते हैं।

मरुस्थल शुष्क प्रदेश हैं जिनमें वार्षिक वर्षा 20 से.मी. से भी कम होती है और यहां की मिट्टी उपजाऊ होते हुए भी इतनी छिद्रित होती है कि उसमें जल रुक ही नहीं पाता। गर्मियों में वहाँ के तापमान में बहुत ज्यादा दैनिकदिवापरक अंतर पाया जाता है। दिन में अधिकतम तापमान 40°C हो सकता है और उसी रात को यह 15°C तक गिर जाता है वहाँ मेघावरण न होने के कारण प्रकाश की तीव्रता बहुत अधिक हो जाती है। वास्तविक मरुस्थल है अफ्रीका का सहारा और आस्ट्रेलिया का विशाल मरुस्थल जहां वार्षिक वर्षा 2 से.मी. से भी कम होती है। ऐसे स्थानों में केवल वे ही पौधे और प्राणी जीवित रह पाते हैं जिनमें कुछ ऐसे विशेष लक्षण विकसित हो गए हों जो उन्हें उच्चताप और जलाभाव को सहन कर सकने योग्य बना देते हैं।

इसके विपरीत तापमान की दूसरी चरम सीमा उत्तरी ध्रुव प्रदेश तथा ऐल्पाइन टुंड्रा में पाई जाती है। टुंड्रा शब्द का अर्थ है अनावृत पर्वत शिखर (bare mountain top) जहां कुछ नहीं है। टुंड्रा वर्ष के अधिकांश भाग में बर्फ से जमे

रहते हैं और यहां भी वार्षिक वर्षा लगभग 20 से.मी. ही होती है इसलिए मरुस्थलों से बहुत मिलते-जुलते हैं। लेकिन अल्पकालिक ग्रीष्म के दौरान, यहां बर्फ की ऊपरी परतों के पिघलने से जल भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। तब जमीन पर छोटी-छोटी घास और मॉस (moss) एवं लाइकेन (lichen) जहां-तहां उग आते हैं। 3-5 से.मी. मोटी इस पिघली परत के नीचे जो मिट्टी होती है जहां हमेशा बर्फ जमी रहती है उसे स्थायी तुषारभूमि (permafrost) कहते हैं। चूंकि यहां पौधों की जड़ें मिट्टी में गहराई तक घुस नहीं सकती इसलिए यहां वृक्ष नहीं होते हैं।

उत्तर ध्रुवीय टुंड्रा संसार के उत्तरीय अक्षांशों की मेखला तक ही सीमित है। ऐशिया, यूरोप तथा उत्तरी अमरीका में समुद्र तटों और उत्तर ध्रुवीय महासागरों के द्वीपों में पाए जाने वाले उत्तर ध्रुवीय घास मैदान यही टुंड्रा है। ऐल्पाइन टुंड्रा विश्व भर में विभिन्न अक्षांशों पर उच्च तुंगताओं पर पाए जाते है।

आइए, अब देखें कि तापमान की इन चरम सीमाओं में पौधे और प्राणी किस प्रकार अनुकूलित हैं।

2.3.5 अनुकूलनताएं

प्रत्येक जीवधारी अपने जीवन-इतिहास में जलवायु संबंधी परिस्थितियों के एक निश्चित परास के भीतर ही जीवित रह सकते हैं और जनन कर सकते हैं। गर्म अथवा ठंडे पर्यावरणों में रहने वाले जीवधारियों में ऐसे व्यावहारात्मक (behavioural) तथा शरीर क्रियात्मक (physiological) लक्षण पाए जाते हैं जिन के कारण वे चरम तापमानों पर जीवित बने रह सकते हैं। स्वयं को जीवित रखने में कुशल ये जीवधारी या तो इन चरम परिस्थितियों को सहन कर लेते हैं या फिर वे ऐसी विधियाँ विकसित कर लेते हैं कि ऐसे परिस्थितियों को सहन कर वह पूरी तरह बच जाएं। उदाहरणतः उच्चताप प्रभाव से बचने के लिए मरुस्थलों में पाए जाने वाले पौधों में क्यूटिकल की एक मोटी परत होती है उनमें मासलता (succulence) आ जाती है। पत्तियों और तनों में जल-संचयी ऊतक विकसित हो जाते हैं। अनेक कैक्टसों में तना हरा होता है और वह पत्तियों का कार्य करता है यानि प्रकाश-संश्लेषण द्वारा भोजन बनाने का। इन पौधों में शरीर-क्रियात्मक अनुकूलन भी होते हैं। इनके स्टोमैटा (stomata) दिन में बंद रहते हैं ताकि वाष्पोत्सर्जन (transpiration) में होने वाली जल-हानि को रोका जा सके। दिन के दौरान जब स्टोमैटा बंद होते हैं तब कार्बनडाइआक्साइड (CO_2) का विसरण (diffusion) नहीं हो सकता। प्रकाश संश्लेषण करने के लिए इन पौधों में विशिष्ट शरीर क्रियात्मक अनुकूलन हो जाते हैं। रात के समय जब उनके स्टोमैटा खुले होते हैं तब वे कार्बनडाइआक्साइड (CO_2) को भीतर ले लेते हैं और उसे चार कार्बन वाले अम्ल (4-carbon acid) के रूप में इकट्ठा कर लेते हैं। रात के समय पकड़ ली गई यह कार्बनडाइआक्साइड बाद में दिन के समय विमोचित हो कर प्रकाश संश्लेषण में इस्तेमाल हो जाती है। इस प्रकार के उपापचय को क्रस्टलैसियन ऐसिड मेटाबोलिज्म (crustulacean acid metabolism) कहते हैं। इस विधि का विस्तार से वर्णन जैव क्रिया विज्ञान (physiology) के पाठ्यक्रम में किया जाएगा। स्थिर अनुकूल तापमान क्षेत्र (constant favourable temperature) बनाम एकांतरक्रमी तापमान (alternating temperature) के लिए पौधों की अनुक्रियाओं के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि बीजांकुरण, वनस्पति वृद्धि अथवा फल-निर्माण एकांतरक्रमी तापमान में सबसे अच्छे होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पौधों में तापमान परिवर्तनों के प्राकृतिक तालबद्ध दैनिक द्विवापरक चक्र (rythmic diurnal cycle) के साथ संमजन बना होता है। नियतकालिक ताप परिवर्तनों के प्रति पौधों की अनुक्रियाओं के नियमन को तापकालिता (thermoperiodism) कहते हैं।

आइए, अब हम देखें कि तापमान बलाघात से जूझने के लिए प्राणी क्या-क्या उपाय करते हैं। पौधों की अपेक्षा प्राणियों की स्थिति बेहतर है क्योंकि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आ-जा सकते हैं। वे शरीर क्रियात्मक तथा व्यावहारात्मक विधियों से अपने भीतर और बाहर के पर्यावरण का नियमन करके तापमान बलाघात से जूझते हैं। कदाचित आप जानते ही होंगे कि पक्षी और स्तनजीवी अपने शरीरों का तापमान स्थिर बनाए रख सकते हैं। ऐसा वे कोशिकीय श्वसन के दौरान निकलने वाली उपापचय ऊर्जा का इस्तेमाल करके करते हैं, इन्हें समतापी (homeotherm) अथवा अंतः तापी (endotherm) कहते हैं क्योंकि वे अपनी भीतरी विधियों द्वारा स्थिर देह-तापमान का नियंत्रण करते हैं। इस गर्मी को भीतर कायम बनाए रखने में देह की वसा, देह के ऊपर पाए जाने वाले पर, समूर (fur) अथवा बाल आदि सहायता करते हैं। कुछ प्राणी अपने देह तापमान का नियमन करने के लिए अनेक व्यावहारात्मक क्रियाविधियाँ भी इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार के नियमन को व्यवहारात्मक तापमान नियमन करते हैं। उदाहरणतः दिन में अधिक गर्मी के समय वे छायादार स्थानों में चले जाते हैं या पानी में डुबकी लगा सकते हैं। रेगिस्तानी प्राणी, जैसे सांप, छिपकली, बिच्छू तथा चूहे अधिकतर रात्रिचर होते हैं, यानि वे दिन के समय चिलचिलाती धूप से बचने के लिए छिपे रहते हैं और रात को या सुबह तड़के जब तापमान सामान्यतः कम होता है, भोजन की तलाश में घूमते, विचरते हैं। छिपकली और सांप जैसे सरीसृपों को अनियततापी (cold blooded) कहा जाता है क्योंकि वे अपने शरीर का तापमान नियंत्रित नहीं कर सकते। मगर इन प्राणियों पर किए गए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि वे भी व्यावहारात्मक विधियों से अपने शरीर के तापमान को कारगर रूप में नियंत्रित कर सकते हैं। सरीसृप प्राणी अपनी बिलों के भीतर और बाहर इस तरह आते जाते हैं कि उनके शरीर का तापमान काफी हद तक स्थिर बना रहता है। देखा गया है कि पर्यावरण में होने वाले भारी तापमान के उतार चढ़ाव के बावजूद रेगिस्तानी छिपकली अपने देह तापमान को 31° और 39° के बीच बनाए रख सकती है। ऐसे प्राणियों को असमतापी अथवा बाह्य तापी (poikilothermic) कहते हैं, ऐसा इसलिए क्योंकि वे व्यावहारात्मक विधियों के द्वारा अपने शरीर के तापमान को काफी हद तक नियंत्रित कर सकते हैं। प्राणी अपने शरीर के तापमान को पसीने तथा वाष्पन के द्वारा अतिरिक्त गर्मी को निकाल कर भी नियंत्रित करते हैं।

सर्दी में उत्तरी प्रदेशों से साइबेरियन सारस भरतपुर पक्षी वन को प्रवास करते हैं।

अधिक ठंडी जलवायु में प्राणियों में गर्मी एकत्रित करने के लिए अनुकूलन होते हैं। पक्षी अपने शरीर को कंपकपा कर अपने पंखों की पेशीय क्रिया को बढ़ाकर अपने शरीर को गर्म रखते हैं। कैमीलियान (एक प्रकार का गिरगिट) अपना रंग बदल कर काला कर लेता है जिससे उसकी गर्मी अवशोषित करने की क्षमता बढ़ जाती है, ऐसे प्राणियों को एक्टोधर्मी (ectotherm) कहते हैं जो धूप तापते हैं। प्राणी एक और तरीके से तापमान का नियंत्रण करते हैं जिसमें वे अपने

शरीर का कुछ ही भाग धूप में रखते हैं ताकि उतनी ही गर्मी वे प्राप्त कर सकें जितनी उन्हें चाहिए। प्रतिकूल जलवायु परिस्थिति से बचने का एक और तरीका प्रवास के रूप होता है। कदाचित आप जानते हैं कि उत्तरी अथवा शीतलतर प्रदेशों के पक्षी, सर्दियों में दक्षिणी गर्मतर प्रदेशों में पहुँच जाते हैं। मछलियाँ तैर कर लंबी-लंबी दूरियां तय करती हैं ताकि वे ऐसी जल राशियों में पहुँच जाएं जहां उनके जीवित रहने के लिए अनुकूल तापमान मिलता है। कुछ प्राणी, जैसे कि चमगादड़ झाउमूसे (hedgehog) स्थलीय गिलहरी और छिपकलियाँ अपनी उपापचयी क्रियाओं को घटा कर शीत निष्क्रियता की अवस्था में आ जाती हैं जिससे उनकी ऊर्जा आवश्यकताएं कम से कम हो जाती है। गर्मियों में उच्च तापमान से बचने के लिए कीट, फेफड़ा-मछली ऐम्फिबियन आदि भी अपने क्रिया कलापों को निलंबित कर देते हैं और एक प्रसुप्त जीवन व्यतीत करने लगते हैं। इस अवस्था को ग्रीष्म निष्क्रियता (aestivation) कहते हैं।

अब आप निम्नलिखित बोध प्रश्न को हल करने का प्रयास कीजिए।

बोध प्रश्न 3

क) सही कथनों पर (√) निशान लगाइए :

i) बढ़ते जाते अक्षांशों में तापमान में विविधता किस कारण आती है :

क) प्रकाश कम घंटे रहता है।

ख) सौर-किरण पुंज की तीव्रता घट जाती है।

ग) अवरक्त किरणों के ठंडे होने की दर सौर विकिरण के अवशोषण से ज्यादा होती है।

ii) वनस्पति पर बढ़ती जाती तुंगता का प्रभाव वैसा ही होता है जैसा कि बढ़ते जाते अक्षांशों का, क्योंकि :

क) पर्वतों के कारण धूप का कोण बदल जाता है।

ख) तुंगता और अक्षांश दोनों ही बायोस्फियर में अधिक ऊपर होते हैं।

ग) अक्षांश तथा तुंगता दोनों ही के साथ तापमान घटता जाता है।

iii) तापमान में होने वाले दिवापरक परिवर्तन कहां पर ज्यादा होते हैं :

क) रेगिस्तानी प्रदेश

ख) तटवर्ती प्रदेश

iv) जिस प्राणी की देह का तापमान परिवेश बदलता है उसे क्या कहते हैं :

क) पोइकिलाथर्म

ख) होमोथर्म

v) स्टीनोथर्मी प्राणी किस प्रकार के तापमान को सहन करते हैं :

क) उच्चतम और न्यूनतम ताप में बहुत अधिक अंतर वाले तापमान को

ख) सीमित अंतर वाले तापमान को

ख) जब हवा ऊपर को उठती है तब उसका तापमान क्यों गिर जाता है? समझाइए।

.....

.....

.....

ग) गलत शब्दों को काटिए।

i) पृथ्वी पर औसतन हर बिंदु पर (दिन का प्रकाश/उष्मा) प्रतिवर्ष समान घंटों के लिए पड़ता है।

ii) (उच्चतर/निम्नतर) अक्षांशों पर सौर-विकिरण के अवशोषण के द्वारा गर्म होने की दर शीतलन की दर से (अधिक/कम) होती है।

2.4 वायुमंडल

आधार पाठ्यक्रम की इकाई 15 में आप पढ़ चुके हैं कि पृथ्वी के चारों ओर वायुमंडल यानि एक गैसीय आवरण होता है। वायुमंडल हमारे जीवमंडल का ही एक अनिवार्य भाग है। वायुमंडल की संरचना का अध्ययन करना जरूरी है क्योंकि इसी संरचना के आधार पर हमारे इस ग्रह की जलवायु और मौसम तथा इस पर जीवनाश्रयी तंत्र निर्भर करते हैं।

2.4.1 संरचना

आज का वायुमंडल उस एक लंबे विकासीय प्रक्रम का उत्पाद है जो चार अरब वर्ष पहले शुरू हुआ था। वायुमंडल विभिन्न गैसों के मिश्रण तथा निलंबित कणों का बना है (तालिका 2.2) जैसा कि आप इस तालिका में देखेंगे, वायुमंडल

में लगभग 12 गैसे पाई जाती हैं, इनमें से अधिकतर गैसे अत्यन्त अल्प मात्रा में होती हैं। नाइट्रोजन और ऑक्सीजन इसकी मुख्य गैसें हैं। वायुमंडलीय गैसों में लगातार मिश्रण होने के कारण इसकी यह संरचना लगभग 15 किलोमीटर की ऊंचाई तक करीब-करीब स्थिर बनी रहती है। हम पृथ्वी पर चाहे कहीं भी जाएं, हम निश्चिंत रह सकते हैं कि हम अनिवार्यतः एक ही प्रकार की वायु में सांस ले रहे हैं।

तालिका 2.2

जल वाष्प को छोड़कर वायुमंडल के निम्न भाग (80 किलोमीटर तक) में गैसों का आपेक्षिक अनुपात

गैस	प्रतिशत आयतन	प्रति दस लाख में भाग
नाइट्रोजन	78.08	780,840.0
ऑक्सीजन	20.95	209,460.0
आर्गन	0.93	9,340.0
कार्बनडाइऑक्साइड	0.03	340.0
हीलियम	0.00052	5.2
नीऑन	0.0018	18.0
क्रिपटान	0.0010	1.0
मीथेन	0.00015	1.5
हाइड्रोजन	0.00005	0.5
नाइट्रस ऑक्साइड	0.00005	0.5
ओजोन	0.000007	0.07
जीनॉन	0.000009	0.09

वायुमंडल में सूक्ष्मतल अथवा ठोस कण भी होते हैं जिन्हें ऐरोसोल (aerosol) कहते हैं। ये अधिकतर निचले वायुमंडल में पृथ्वी की सतह के निकट (80 किलोमीटर तक) पाए जाते हैं। ये ऐरोसोल अनेक स्रोतों से आते हैं। दावानलों (forest fires) के परिणामस्वरूप, मिट्टी के वायु अपरदन से, समुद्री लहरों की फुआर से निकले लवण क्रिस्टलों के रूप में, औद्योगिक एवं कृषि क्रियाकलाप से।

2.4.2 स्तरीकरण

वायु तापमान में अंतर के आधार पर वायुमंडल को उदग्र रूप (vertically) में चार परतों में बांटा गया है (चित्र 2.21 देखिए) ट्रोपोस्फीयर (troposphere), स्ट्रेटोस्फीयर (stratosphere), मीजोस्फीयर (mesosphere) तथा थर्मोस्फीयर (thefmosphere)।

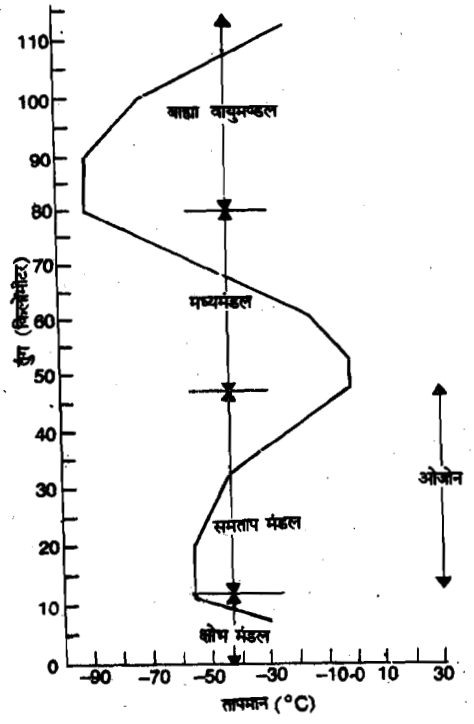

चित्र 2.21 : वायुमंडल को उदग्र रूप में चार क्षेत्रों में बांटा गया है जो वायु के तापमान पर आधारित हैं।

ट्रोपोस्फीयर अर्थात् सबसे निचली परत विषुवत् रेखा पर 15 किलोमीटर तक की ऊंचाई तक तथा ध्रुवों पर 8 कि.मी. की ऊंचाई तक फैली होती है। इस क्षेत्र में बढ़ती जाती तुंगता अथवा ऊंचाई के साथ-साथ तापमान घटता जाता है।

अगली परत *स्ट्रेटोस्फीयर* लगभग 50 किलोमीटर की ऊंचाई तक जाती है। यहां ऊंचाई के साथ-साथ तापमान में धीरे-धीरे वृद्धि होती जाती है। जेट विमानों के चालक विमान को इसी परत में उड़ाना पसंद करते हैं। क्योंकि यह क्षेत्र अपेक्षाकृत स्थायी रहता है और इसमें मौसम संबंधी उतार-चढ़ाव भी नहीं होते तथा इसमें दिखाई भी एकदम साफ देता है। वैज्ञानिकगण इस बात से चिंतित हैं कि स्ट्रेटोस्फीयर में प्रदूषण बढ़ता जा रहा है क्योंकि एक बार इस क्षेत्र में यदि प्रदूषक पहुंच गए तब वे संभवतः वहां लंबे समय तक बने रहेंगे। इस विषय को एक अन्य इकाई में विस्तार से बताया जायेगा।

अगली परत *मीजोस्फीयर* की होती है जिसमें तापमान उसके निचले भाग में तो स्थिर रहता है, लेकिन बाद में ऊंचाई के साथ-साथ तापमान में तेजी से गिरावट आने लगती है। 80 किलोमीटर पर तापमान वायुमंडल में सबसे कम होता है। (औसतन $\sim 90^{\circ}C$)। इसके ऊपर *थर्मोस्फीयर* आता है जिसमें जैसे-जैसे ऊंचाई बढ़ती जाती है वैसे-वैसे तापमान बढ़ता जाता है। वायुमंडल की इस सबसे बाहरी परत पर फिलहाल मानक क्रिया कलापों का कोई सीधा प्रभाव नहीं है।

बोध प्रश्न 4

क) सही कथन पर (√) निशान लगाइए :

i) लगभग 80 किलोमीटर की ऊंचाई तक वायुमंडल की संरचना स्थिर होती है।

ii) ऐरोसोल समूचे वायुमंडल में एक समान वितरित रहते हैं।

iii) ऐरोसोलों की उत्पत्ति मात्र दावानलों से होती है।

ख) कोष्ठकों में दिए गए दो-दो शब्दों में सही शब्द चुनिए :

i) जैसे-जैसे ट्रोपोस्फीयर में हम ऊपर जाते हैं, वैसे-वैसे वायु का तापमान (घटता/बढ़ता) है।

ii) जैट वायुयानों के चालक (मीजोस्फीयर/स्ट्रेटोस्फीयर) में उड़ना पसंद करते हैं।

iii) थर्मोस्फीयर में हवा का तापमान ऊंचाई के साथ-साथ (बढ़ता/घटता) जाता है।

iv) वायुमंडल में 80 किलोमीटर की ऊंचाई पर तापमान (निम्नतम/उच्चतम) होता है।

2.4.3 दाब प्रवणता

आप जानते ही हैं कि पृथ्वी की सतह के एक इकाई क्षेत्र के ऊपर वायुमंडल के भार को वायुदाब कहते हैं। समुद्र की सतह पर औसत वायुदाब लगभग एक kg/cm^2 होता है। समुद्र की सतह के हर बिंदु पर वायुदाब समान ही होता है। जैसा कि हम जानते हैं गुरुत्व पृथ्वी की सतह की हर वस्तु को थामे हुए हैं, इस तरह यही गुरुत्व वायुमंडल की गैसों को भी पृथ्वी के चारों ओर एक आवरण के रूप में रोके हुए है। गुरुत्व के कारण पृथ्वी की सतह के ऊपर वायुमंडल संपीड़ित होता है जिसके परिणामस्वरूप जैसे-जैसे वायुमंडल में ऊंचाई बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वायु दाब घटता जाता है।

mm ऊंचाई के माप की एकविमा इकाई है, जबकि दाब, भार-क्षेत्र होता है और उसे एक अलग इकाई मिलीबार (mb) में व्यक्त किया जाता था। एक मिलीबार 100 न्यूटन/मीटर (100 N/m^2) के बराबर होता है। आजकल दाब को पास्कल (Pascal, Pa) की इकाई में व्यक्त किया जाता है। 1 $Pa = 1N/m^2$, न्यूटन बल की इकाई होती है। यह वह बल है जो एक किलोग्राम संहति को एक मीटर प्रति सैकिंड का त्वरण (accleration) प्रदान करे।

टेलीविजन और रेडियो के मौसम-भविष्यवक्ता वायुदाब को प्रायः mm में बताते हैं, यानि लंबाई की इकाई में। वास्तव में यह उस ऊंचाई को व्यक्त करता है यानि किसी एक विशिष्ट केन्द्र पर किसी एक विशिष्ट समय पर बैरोमीटर में कितनी ऊंचाई तक पारा चढ़ता है। मगर दाब को millibar (mb) में व्यक्त करना अधिक सही होगा। समुद्र की सतह पर औसत दाब 1013.25 mb होता है।

आइए अब देखें वायुमंडल में ऊंचाई पर जाने से वायुदाब तथा घनत्व में क्या परिवर्तन होता है। वायु घनत्व जो कि प्रति इकाई आयतन में संहति की मात्रा है, ऊंचाई के साथ-साथ घटता जाता है। वायुमंडल की 90 प्रतिशत संहति पृथ्वी की सतह और लगभग 32 किलोमीटर की ऊंचाई के बीच रहती है। वायुमंडलीय संहति का लगभग आधा भाग पृथ्वी की सतह और 5.5 किलोमीटर की ऊंचाई के बीच होता है। इस ऊंचाई पर वायुदाब भी समुद्र की सतह पर पाए जाने वाले वायुदाब से आधा होता है।

अधिक ऊंचाइयों पर पौधों और जानवरों के वितरण के लिए अधिसंख्य मामलों में दाब में ह्रास सीमाकारी कारक नहीं होता। वहां कुछ अन्य प्रतिकूल परिस्थितियां होती हैं जैसे निम्नताप, भोजन का अभाव, अनुपयुक्त मिट्टी आदि। हिमालय के उच्चतम वनस्पति स्थलों पर बीट्ल्स (beetles) की अनेक स्पीशीज़ पाई जाती हैं। इनके अलावा एंडीज (Andes) पर्वत पर केंचुए हिमरेखा तक मिलते हैं। मगर नियततापी कशेरूकी (warm blooded) प्राणियों को उच्च तुंगता पर कम वायुदाब और कम वायुघनत्व के कारण सांस लेने में कठिनाई होती है।

उच्च तुंगताओं पर निम्नतर वायुदाब के साथ-साथ होने वाले वायु के फैलाव एवं अल्पीकरण से मनुष्य में शरीर क्रियात्मक परिवर्तन चालू हो जाते हैं। उदाहरण के लिए अधिक ऊंचाई पर व्यक्ति को चक्कर आने लगते हैं, सिर में दर्द होने लगता है, सांस फूलने लगती है, मगर धीरे-धीरे वह निम्न ऑक्सीजन स्तर के लिए अनुकूलित और अभ्यस्त होता जाता है। लेकिन लगभग 5.5 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर पाए जाने वाले दाब को मनुष्य सहन नहीं कर पाते। वायुदाब में अपेक्षाकृत थोड़े से परिवर्तन से भी मौसम में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हो सकते हैं। एक ऐसे बड़े आयतन की वायु को जिसका तापमान और जल वाष्प की मात्रा अपेक्षाकृत समान हो, वायु-संहति कहते हैं। जैसे-जैसे वायु-संहतियां एक स्थान से दूसरे स्थान में जाती हैं, वैसे-वैसे उनका सतही वायुदाब घटता या बढ़ता जाता है, जिससे मौसम में परिवर्तन होता है। नियमतः निम्न दाब से तूफानी मौसम पैदा होता है और जब वायुदाब बढ़ता है तब मौसम सुधर जाता है।

2.4.4 भूमंडलीय वायु परिचालन

पृथ्वी के सतही भागों के गर्म होने से विषुवत् रेखा पर पृथ्वी के चारों ओर की वायु की बड़ी-बड़ी संहतियां नीचे से ऊपर को उठती हैं और इन्हीं के कारण पृथ्वी के प्रमुख पवन तंत्र पैदा होते हैं (खंड 2.3.1 को याद कीजिए, जिसमें बताया गया था कि विषुवत् रेखा पर सूर्य का अधिकतम प्रकाश आता है) । इस प्रकार पैदा हुई रिक्तता को भरने के लिए ऊंची-ऊंची तुंगताओं से ठंडी हवाएं तेजी से चलकर पहुंच जाती हैं। विषुवत् रेखा से चली गर्म हवा ध्रुवों की ओर बढ़ती जाती है जहां पर वह नीचे उतरती है और पृथ्वी की सतह के सहारे-सहारे फिर से विषुवत् रेखा की ओर पहुंच जाती है। चित्र 2.22 में इस तंत्र को दर्शाया गया है और इस पर दो कारकों का प्रभाव पड़ता है :

1 वायु संहतियों में ऊष्मा धारण किए रखने की क्षमता महासागरों जितनी नहीं होती है। आप जानते हैं कि थल जल्दी ही ठंडा और जल्दी ही गर्म हो जाता है और आप यह भी जानते हैं कि थल संहतियां समान रूप से वितरित नहीं है।

2 पृथ्वी के घूर्णन से एक और बल कार्य करता है जो उत्तरी गोलार्द्ध में वायु-प्रवाह को दाहिनी ओर को विक्षेपित कर देता है और दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं तरफ।

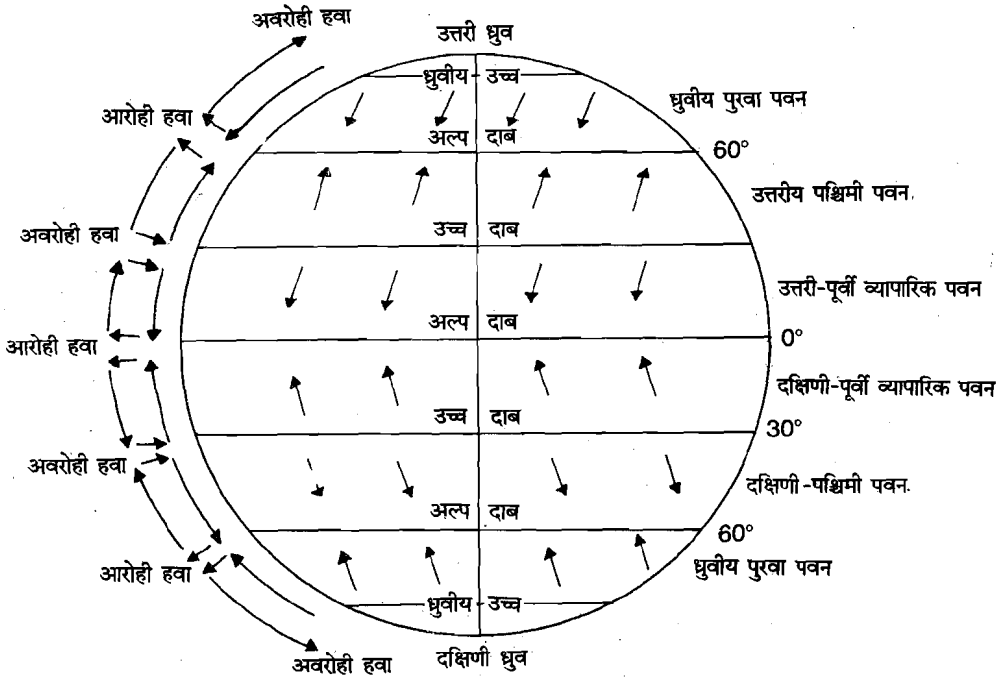

चित्र 2.22 : भूमंडलीय हवा का प्रतिमान

आइए अब हम उष्ण कटिबंधीय अक्षांशों में वायु गतियों का स्पष्टीकरण करें। उत्तर से आने वाले वह सतही हवा जो विषुवत् रेखीय रिक्त क्षेत्र को भरने के लिए चलती है, वह दाहिनी तरफ विक्षेपित हो जाती है और यही हवा उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवन कहलाती है। यह हवा दक्षिण से आने वाली ऐसी ही हवा से मिल जाती है जो बांयी ओर विक्षेपित हुई थी, यानि दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवन के साथ। लेकिन दक्षिणी गोलार्द्ध में थल का अंश बहुत कम है जो अन्यथा दक्षिण-पूर्वी व्यापारिक पवन के मार्ग में बाधा पैदा करता है। अतः व्यापारिक पवनें ठीक विषुवत् रेखीय समतल पर नहीं मिलती, बल्कि किसी कदर उससे उत्तर की तरफ। इसे अंतराउष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (inter-tropical convergence zone) कहते हैं, यह भारी वर्षा का क्षेत्र है।

विद्यमान वायु-धाराएं विभिन्न परितंत्रों के वितरण को भी प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए विषुवत् रेखा पर गर्म हवा अपनी आर्द्रता को त्याग कर ऊपर उठती है और उसमें एडायबेटिक परिवर्तन आ जाते हैं तथा इसके परिणामस्वरूप वर्षा होती है जिससे जंगल भरपूर फलते-फूलते हैं। शुष्कतर वायु लगभग 30 अक्षांश पर उतरती है, इसलिए पृथ्वी के प्रमुख रेगिस्तानी क्षेत्र, जैसे कि सहारा और अमरीका का दक्षिण-पश्चिमी रेगिस्तान एवं भारत का थार रेगिस्तान इसी पट्टी में आते हैं। यहां वायु फिर से गर्म हो जाती हैं, नमी ग्रहण कर लेती हैं और 60° अक्षांश पर ऊपर उठ जाती है तथा ध्रुव दिशाओं की तरफ बढ़ती जाती है। यह हवा समतल प्रदेशों में वर्षा रहित ही उतरती है।

मानसून

आपने खंड 2.4 में पढ़ा था कि समुद्र तटीय क्षेत्रों के जलवायु में अधिक अंतर नहीं आता जबकि अधिक बड़े थल-खंडों में, जैसे कि एशिया में, अति स्पष्ट ऋतुपरक परिवर्तन होते हैं यहां साइबेरिया के जाड़ों में उच्च दाब वाले क्षेत्रों के कारण हवाएं महाद्वीपीय भागों से समुद्र तट की तरफ बहने लगती हैं। लेकिन भारत में हम हिमालय पर्वत माला के कारण इन ठंडी हवाओं से बचे रहते हैं। यही कारण है कि हमारे यहां बहुत कड़ा शीत नहीं पड़ता। ग्रीष्म में साइबेरिया के

ऊपरी बहुत कम दबाव वाले क्षेत्र, महासागरों से उठकर थल की ओर आने वाली आर्द्र हवा की भारी मात्रा को अपनी ओर खींच लेते हैं। इन्हीं हवाओं से विशाल ग्रीष्म मानसून का सृजन होता है जो दक्षिण पूर्वी प्रदेश के देशों की विशिष्टता है। पुनः हिमालय पर्वतमाला के ही कारण हमारे यहां भारी मानसून भी होता है, क्योंकि नमी से भरी ये हवाएं इन्हीं पर्वतों से टकरा पर वर्षा पैदा करती है।

चित्र 2.23 : वायु तापमान में परिवर्तन। जैसे वायु ऊपर उठती है वह फैलती है जिससे वह ठंडी होती है। ठंडी हवा कम नमी रोक पाती है और बादल बनते हैं। इन बादलों के कारण पर्वत के पवनाभिमुख पार्श्व पर भारी वर्षा होती है। जैसे ही यह वायु पर्वत के दूसरे पार्श्व की ओर नीचे की तरफ उतरती जाती है, यह सघन होती जाती है और अपने परिवेश में से नमी को ग्रहण करती जाती है। यही वह कारण है कि संसार के सर्वाधिक नमी वाले स्थान पर्वतों के पवनाभिमुख पार्श्वों पर होते हैं और कुछ सबसे सूखे स्थान ऐसे पर्वतों के दूसरे पार्श्व पर होते है।

उत्क्रमण

आप जानते हैं कि वायुमंडल नीचे से ही गर्म होता है और गर्म हवा ऊपर उठती है। मगर ऐसी भी स्थिति हो सकती है कि हवा ऊपर को उठ ही न सके। ऐसी स्थिति को उत्क्रमण कहते हैं। यह वह स्थिति है जिसमें गर्म हवा की परत ठंडी हवा के ऊपर तैरती रहती है। उत्क्रमण का एक कारण वायु का वह प्रवाह है जो दूर-दूर तक फैले ठंडे महासागरों पर से होकर बहता रहता है। यहां गतिशील वायु नीचे से गर्म न होकर ठंडी होती जाती है। ये हवाएं सतही हवाओं के निम्नताप के कारण अपेक्षाकृत शुष्क होती हैं, हालांकि भले ही वे महासागरों पर से होकर गुजर रही होती हैं और इस प्रकार के उत्क्रमण के नीचे आने वाला थल रेगिस्तान का रूप ले सकता है। डार्विन जिन गैलेपागोज (Galapago's) द्वीपों पर पहुंचा था वे मरुस्थल हैं। क्योंकि वे ऐसे ही उत्क्रमण क्षेत्र के नीचे आते हैं, हालांकि वे विषुवत् रेखा पर स्थित हैं। ये द्वीप उस स्थित उत्क्रमित वायु के मार्ग में स्थित हैं जो अंतराउष्ण कटिबंधीय अभिसरण की ओर बढ़ रही होती है। स्थानीय उत्क्रमण बहुत महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि ऐसी परिस्थिति में प्रदूषण स्तर बढ़ जाता है। निम्न वेग की हवाओं के कारण ऊपर वाली हवा नीचे के स्तर की हवा के साथ मिश्रित नहीं हो पाती जिससे वह स्थिर हो जाती है। ऐसा निम्न तापमान की दशाओं में प्रायः होता ही है; और तब ओस, धुंध अथवा कुहासा बन जाता है। इस प्रकार जमीन ठंडी बनी रहती है और जड़ पकड़े प्रदूषक वहां से निकल कर बाहर नहीं जा सकते।

बोध प्रश्न 5

क) 5.5 किलोमीटर की ऊंचाई से और ऊपर चढ़ना हो तो पर्वतारोहियों को अपने साथ ऑक्सीजन क्यों ले जानी पड़ती है?

.....

.....

.....

ख) निम्न कथनों में से कौन सा सही है, कौन सा गलत, और यदि गलत है तो बताइए कि क्यों?

i) पृथ्वी के घूर्णन से संबद्ध बल वायु-संहतियों को उत्तरी गोलार्ध में दाहिनी ओर बहने को प्रेरित करता है और दक्षिणी गोलार्ध में बांयी तरफ को।

ii) उत्तर-पूर्वी व्यापार हवाएं तथा दक्षिण पूर्वी व्यापार हवाएं ठीक विषुवत् रेखा के ऊपर मिल कर अंतरउष्णकटिबंधीय क्षेत्र बनाती हैं।

iii) संसार के अधिसंख्य रेगिस्तान 60° अक्षांशों पर स्थित हैं।

iv) महासागरीय जल उत्तरी गोलार्द्ध में दक्षिणावर्त दिशा में तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में वामावर्त दिशा में प्रवाहित होते हैं।

2.4.5 हवाएं

हवा अथवा पवन की तेज धारा एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक कारक है। क्योंकि इसके द्वारा खास तौर से समतल मैदानों, समुद्र तटों और पर्वतों की ऊंचाईयों पर पाई जाने वाली वनस्पति पर प्रभाव पड़ता है। इसका सीधा असर वाष्पोत्सर्जन

(transpiration) पर पड़ता है तथा इसके कारण पौधों को क्षति होती है। परन्तु पवन परागों, बीजों और फलों के प्रकीर्णन का एक महत्वपूर्ण साधन है। पौधों में तेज हवाओं से बचने के लिए विशेषतः कुछ अनेक भौतिकीय (physical) एवं जैव क्रियात्मक (physiological) और संरचनात्मक (anatomical) अनुकूलन पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए तीव्र वेग वाली हवाओं से वृक्षों की शाखाएं टूट सकती हैं। अथवा पूरा का पूरा वृक्ष ही जमीन से उखड़ सकता है। परन्तु वनों में जहां विभिन्न ऊंचाइयों के वृक्ष होते हैं, वह हवाओं के वेग को अस्सी प्रतिशत तक कम कर सकते हैं और इस प्रकार वृक्षों की कम हानि होती है। जंगलों के ऐसे वृक्ष एक प्राकृतिक पवनरोधक अर्थात **आश्रय पट्टी** का कार्य करते हैं। **पवन रोधक** एक ऐसी संघनतः ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की एक पट्टी होती है जो 15 मीटर से लेकर 60 मीटर तक चौड़ी होती है और इस पट्टी की स्थिति वायु की दिशा से समकोण बनाती हुई स्थित होती है। यह पट्टी धरती के समीप वायु के वेग को कम कर देती है। पवनरोधक वाष्पोत्सर्जन की दर वाष्पन (evaporation) अपघर्षण (abrasion) टूट-फूट तथा वायु अपरदन (wind erosion) को कम कर देती है। अक्सर खेतों और बाग बगीचों के चारों ओर कुछ खास प्रकार के वृक्ष और झाड़ियाँ भी इसीलिए लगाई जाती हैं कि तेज हवाओं से होने वाले नुकसान से वे अन्य पौधों को बचा सके।

ऊँचे पर्वतों और समुद्र तटीय जैसे तेज हवाओं वाले क्षेत्रों में वृक्षों का छत्र (canopy) असामान्य हो जाता है। वह ध्वज समान यानि एक पार्श्व वाला बन कर रह जाता है। ऐसे वृक्षों में पवनाभिमुख दिशा में शाखाएं विकसित नहीं हो पातीं और प्रतिपवन दिशा में तने की सुरक्षा प्राप्त हो जाने के कारण वे विकसित हो जाती हैं।

तीव्र वायु वेग के प्रति अनुकूलन

हवा के तीव्र यांत्रिक बल से और उसके द्वारा उड़ा कर लिए जाने वाले रेत, धूल, हिम तथा अन्य पदार्थों के द्वारा लगातार रगड़ लगने के कारण पौधों को जीवित रहने के लिए अनुकूलित होना पड़ता है।

खुले क्षेत्रों में पौधों की वृद्धि पर अकेली हवा का भी असर हो सकता है। खुले हुए पर्वत पार्श्वों पर वृक्षों के तने अक्सर हवा की दिशा के सहारे झुक जाते हैं जो कि तीव्र वेग वाली हवाओं से उन्हें क्षति न हो सके (चित्र 2.24)।

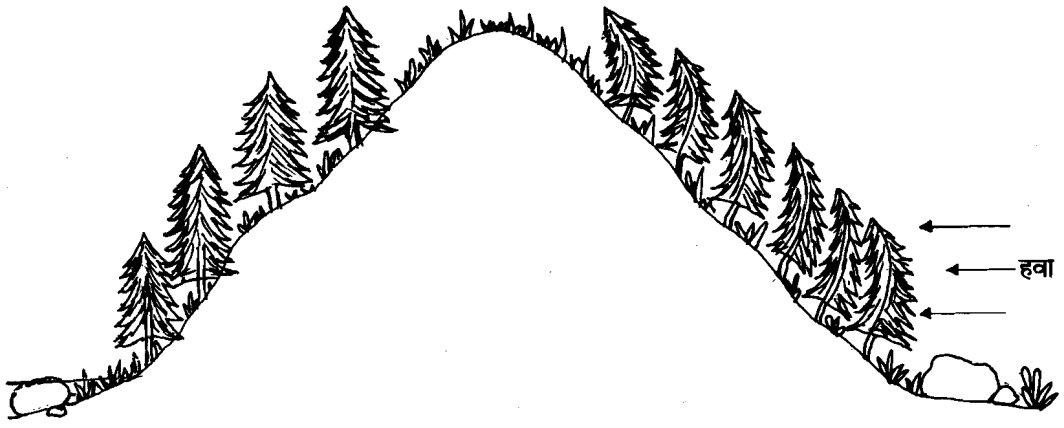

चित्र 2.24 : गुलमर्ग पर्वत पर चीड़ के वृक्षों का एक कोण पर झुक जाना, तेज वेग वाली हवाओं के प्रति अनुकूलन है

रेगिस्तानों में जहां तेज हवाएं अपने साथ कंकड़ी (grit) और रेत उड़ाए लिए चलती हैं वहां केवल कैक्टस जैसे ही पौधे मोटे क्यूटिकल के कारण अपने को रेत की अपघर्षी क्रिया से बचा सकते हैं। यदि आपने नारियल के या किसी भी पाम के वृक्ष को देखा हो तो आपने गौर किया होगा कि इनकी पत्तियां चिरी हुई या कटी-फटी होती हैं। पत्तियों में कटाव भी तीव्र गति वाली हवाओं को सहन करने के लिए अनुकूलन है ताकि पत्तियां टूट-फूट न जाएं।

उत्तरी अक्षांशों की ऊँची पर्वत मालाओं में पाए जाने वाली पादपस्पीशीज़ प्रायः गद्दियों और चटाई के स्वरूप में उगती है जिससे कि वहां चलने वाली तेज हवाओं के थपेड़ों से बची रहे। उदाहरण के लिए रोडियोडेन्ड्रान (Rhodeodendron) एक ऐसा पौधा है जो मैदानों और हिमालय की ऊंचाइयों पर भी पाया जाता है। मैदानों में यह एक वृक्ष के रूप में पनपता है, जबकि पर्वतों पर यह छोटा और जमीन के सहारे लगभग रेंगता सा होता है।

पवन प्रकीर्णन के एक माध्यम के रूप में

अनेक सूक्ष्म जीव और कवकों के स्पोर (spore) को साधारण हवाएं भी अपने साथ दूर-दूर ले जाती हैं। वायु परागित पौधों में पराग कणों की मात्रा अपेक्षाकृत ज्यादा होती है क्योंकि उसका एक बड़ा अंश व्यर्थ चला जाता है। कुछ जीनस (genus) में जैसे कि चीड़ (pines) में पराग कण विशेष तौर पर हवा में तैरने के लिए अनुकूलित हैं उनके भीतर वायु थैलियां पाई जाती हैं। अनेक पौधों के बीज ही अत्यंत सूक्ष्म होते हैं और कुछ के बीजों में पंख जैसी संरचनाएं बन जाती हैं, या उनके ऊपर महीन रेशमी बाल जैसी संरचनाएं बन जाती हैं, जो उन्हें हवा में तैरने में मदद देती हैं (चित्र 2.25)।

फलों और बीजों के प्रकीर्णन के लिए हवा एक सार्वभौमिक कारक है। इस विधि से पौध का स्थापन बेहतर होता है और प्रतिस्पर्धा से बचते हुए पौधों की उत्तरजीविता बढ़ जाती है तथा उनकी वृद्धि ज्यादा अच्छी होती है।

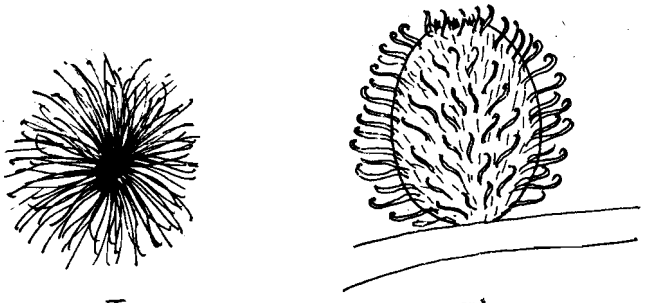

क ख

चित्र 2.25 : पौधों के फल (क) और बीज (ख) हवा द्वारा दूर-दूर तक जाने के लिए अनुकूलित हो जाते हैं

प्रदूषकों का प्रकीर्णन

प्रदूषकों के आरंभिक तनुकरण (dilution) की सीमा उत्सर्जन और उनके प्रकीर्णन की गति एवं दिशा हवाओं पर ही निर्भर होती है। वे जितना दूर-दूर तक और तेजी से फैलेंगे, पर्यावरण पर उनका उतना ही कम प्रभाव होगा। यदि हवा की गति तेज है तो प्रदूषक सान्द्रक अपेक्षाकृत कम होंगे और जब वायु वेग मंद होगा या हवा चल ही नहीं रही होगी तब प्रदूषकों की सान्द्रता ज्यादा हो जाती है।

बोध प्रश्न 6

क) तेज हवाओं की स्थिति के लिए पौधे ही क्यों अनुकूलित होते हैं, प्राणी क्यों नहीं ?

ख) निम्नलिखित खाली स्थानों में उपयुक्त शब्द लिखें :

i) बाग-बगीचों अथवा खेतों के चारों तरफ विभिन्न ऊंचाइयों के वृक्ष लगाए जाते हैं। इन्हें ..... कहते हैं।

ii) वायु द्वारा बीजों और फलों का दूर-दूर तक प्रकीर्णन होता है जिससे उनमें ..... और ..... वृद्धि होती है।

2.5 सारांश

इस इकाई में हमने उन भौतिक पर्यावरण परक कारकों जैसे प्रकाश, तापमान और हवा की चर्चा की है जो स्थलीय पौधों और जानवरों के अस्तित्व और जीवों के वितरण पर प्रकाश डालते हैं। आपने जाना कि —

- विद्युत चुंबकीय स्पेक्ट्रम में अनेक प्रकार के विकिरण होते हैं जिनकी तरंगदैर्ध्य, बारंबारता और ऊर्जा अलग-अलग होती हैं। विभिन्न प्रकाश जैवकीय परिघटनाओं को प्रभावित करने वाले विकिरणों में 300 nm से लेकर लगभग 980 nm तक के बीच तरंगदैर्ध्य होता है।
- सौर विकिरण का भूमंडलीय वितरण और पृथ्वी की सतह पर पहुंचने वाला इसका स्पेक्ट्रमी वितरण वायुमंडलीय दशाओं और वनस्पतियों से प्रभावित होता है। सौर विकिरण की मात्रा, गुणवत्ता और अवधि को उपकरणों से मापा जा सकता है। वायु परिचालन के साथ-साथ प्रकाश अक्षांशीय, तुंगीय और आवधिक परिवर्तन भूमंडलीय तापमान पर प्रभाव डालते हैं। तापमान में भिन्नता के आधार पर वायुमंडल क्षैतिज परतों में विभाजित होता है।
- वायु दाब और घनत्व तुंगता के अनुसार तेजी से कम हो जाते हैं। ऊंघाई के साथ-साथ वायु की कमी से जीवों में जैव क्रियात्मक परिवर्तन होता है।
- वायुमंडलीय पवन के परिचालन से विषुवत रेखा से ध्रुवों की ओर ऊष्मा का पुनर्वितरण होता है।
- जलवायु सह्यता की सीमा पर जीव कार्य करते हैं। टुंड्रा और रेगिस्तानी क्षेत्रों में जहां तापमान में काफी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, वहां पौधों और जानवरों में व्यावहारात्मक जैवक्रियात्मक, शरीर-क्रियात्मक तथा संरचनात्मक अनुकूलन हो जाते हैं और इन अनुकूलनों के कारण वे चरम तापमान में भी जीवित रह सकते हैं। उच्च वायु के वेगवाले क्षेत्रों में पौधे विभिन्न प्रकार के अनुकूलन विकसित कर लेते हैं ताकि वे ऐसी परिस्थितियों में जीवित रह सकें।

2.6 अंत में कुछ प्रश्न

1 क) निम्नलिखित विद्युत चुंबकीय विकिरणों को उनकी ऊर्जा और तरंगदैर्ध्यों के वर्धमान (increasing) क्रम में लिखिए?

दृश्यमान, पराबैंगनी, एक्स-किरणें, गामा-किरणें और रेडियो तरंगें।

.....

.....

ख) निम्नलिखित को सेंटीमीटर और मीटरों में बदलिए :

200 nm 640 μm 4000 Å

ग) 1000 nm तरंगदैर्ध्य वाले विकरण की ऊर्जा प्रति क्वांटम को कैलोरी, जूल और अर्ग में आकलन कीजिए?

.....

.....

2 अंतरिक्ष-यात्रियों को अंतरिक्ष में पृथ्वी चमकती हुई क्यों दिखाई देती है?

.....

.....

.....

.....

3 यदि आप गर्मियों की छुट्टियाँ अर्जेन्टीना में बिताना चाहते हैं तो आप वहां किस प्रकार के कपड़े ले जाएँगे?

.....

.....

4 बढ़ती हुई तुंगता और बढ़ते हुए अक्षांश पर वनस्पति प्रवणता समान प्रकार की ही क्यों होती हैं?

.....

.....

.....

5 वायु के ऊपर पहुंचने पर उसका तापमान क्यों कम होता जाता है?

.....

.....

.....

6 पवन रोधक अथवा आश्रय पट्टी क्या होती है?

.....

.....

.....

2.7 उत्तर

बोध प्रश्न

1 क) $\nu = \frac{c}{\lambda} = \frac{3 \times 10^{10}}{2 \times 10^{5}}$

$$E = h\nu = 6.6 \times 10^{-34} \times \frac{3 \times 10^{10}}{2 \times 10^{10}} = 9.93 \times 10^{-19} \text{ Joules}$$

इसे 4.18 से भाग देने पर 2.37×10^{-19} कैलोरी प्राप्त होगी।

(प्रकाश का प्रवाह और तरंगदैर्ध्य को समान यूनिटों में ही लेना चाहिए।)

ख) i) ग, ii) क, iii) ख, iv) घ।

2 क) उपयुक्त शब्द

i) परावर्तित, ii) अधिक, iii) वायुमंडल के सबसे ऊँचे भाग पर पहुंचने पर,

iv) कम हो जाती है, तिर्यक, अधिक अथवा उदग्रत कम, v) कम, vi) पराबैंगनी,

vii) दृश्यमान, viii) दृश्यमान

ख) i) क, ii) ख, iii) ग, iv) घ।

ग) i) ख, ii) ग, iii) क, iv) घ।

3 क) i) ग, ii) ग, iii) क, iv) क, v) ख।

ख) हवा ज्यों-ज्यों ऊपर उठती जाती है, त्यों-त्यों वह फैलती जाती है और आसपास के अणुओं को धकेलती जाती है। इस प्रक्रिया में उसकी गतिक ऊर्जा नष्ट हो जातो है और वह ठंडी हो जाती है।

ग) सही उत्तर
i) दिन का प्रकाश, ii) उच्चतर, निम्नतर या कम, उच्चतर

4 क) iii)

ख) i) घटता, ii) स्ट्रोटोस्फीयर, iii) बढ़ता, iv) निम्नतम

5 क) 5.5 किलोमीटर से अधिक ऊंचाई पर वायु दाब और घनत्व के कम होने के कारण ऑक्सीजन-स्तर कम हो जाता है।

ख) i) सही

ii) गलत, यह क्षेत्र न्यूनाधिक उत्तर की तरफ होता है, क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध में थल भाग कम होता है जो दक्षिण पूर्वी व्यापारिक पवनों के मार्ग को अवरुद्ध कर सके।

iii) गलत, नमी को विषुवत रेखा के समीपवर्ती भागों में छोड़ती हुई, शुष्क हवा 60° उन्नतांश पर नहीं, बल्कि लगभग 30° उन्नतांश पर पहुँच जाती है।

iv) सही

6 क) क्योंकि पौधे चल फिर नहीं सकते

ख) • पवन-रोधक अथवा आश्रय पट्टी
• जीवित रहने के लिए बेहतर सफलता, बेहतर

अंत में कुछ प्रश्नों के उत्तर

1 क) ऊर्जा : रेडियोतरंगे < दृश्यमान < पराबैंगनी < एक्स-किरणें < गामाकिरणें
तरंगदैर्ध्य : उपरोक्त क्रम का उल्टा (विपरीत)।

ख) • $200 \times 10^{-9} = 2 \times 10^{-7}\text{m} = 2 \times 10^{-5}\text{cm}$

• $640 \times 10^{-6} = 6.4 \times 10^{-4}\text{m} = 6.4 \times 10^{-2}\text{cm}$

• $4000 \times 10^{-10} = 4 \times 10^{-7}\text{m} = 4 \times 10^{-5}\text{cm}$

ग) • $1.99 \times 10^{-19}\text{ J} = 4.75 \times 10^{-20}\text{ cal} = 1.99 \times 10^{-12}\text{egrs}$

2 पृथ्वी अपने ऊपर पहुँचने वाले कुल विकिरण का लगभग 30% भाग या तो परावर्तित कर देती है या छितरा देती है और इसीलिए अंतरिक्ष यात्रियों को पृथ्वी चमकती हुई दिखाई देती है।

3 अर्जेन्टीना चूंकि दक्षिण गोलार्द्ध में हैं, इसलिए वहां सर्दियों मे गर्म कपड़ों की आवश्यकता होगी।

4 तुंगता के बढ़ने से और अक्षांशों के घटने से तापमान कम होता जाता है। इसलिए स्पीशीज़ों के वितरण पर तापमान का प्रभाव समान ही होता है।

5 हवा ज्यों-ज्यों ऊपर को उठती जाती है, त्यों-त्यों वह फैलती जाती है और अपने आस-पास के अणुओं को धकेलती जाती है। इस प्रक्रिया में उसकी गतिक ऊर्जा नष्ट होती जाती है और वह ठंडी होती जाती है।

6 जमीन पर वायु-वेग को कम करने के लिए ऊँचे-ऊँचे वृक्षों को सघन रूप में तथा वायु वेग की दिशा में समकोण बनाते हुए लगा दिया जाता है।